दो शब्द :—

भगवान शंकर की कृपा एवं माता पिता के आशीर्वाद से पिता जी की लिखी हुई श्री कृष्ण - गीता (रामायण की धुन में दोहा, चौपाई) का प्रथम सस्करण प्रकाशित कर भगवान के भक्तों के हाथों में पहुँचाते हुये अपार हर्ष हो रहा है ।

प्रथम प्रयास होने के कारण उसमें कई त्रुटियाँ रह गयी है उसके लिए भक्तगण क्षमा करेंगे ।

अन्त में मैं ऊँ श्री जयरंग ऋषि सामवेदी (पुष्कर), स्व० राधा कृष्ण, श्री भागीरथ शर्मा, प्रमोद जायसवाल, शिव शंकर खण्डेलवाल इन सुहृदय विद्वानों एवं मित्रों को धन्यवाद दिये विना भी नहीं रह सकता जिनकी उत्साह वर्द्धक प्रेरणा से यह श्री कृष्ण - गीता का पद्यानुवाद प्रकाशित कर रहा हूं ।

भवदीय—

राजेन्द्र कुमार शर्मा

प्राक् कथन

प्रकृति के सुदीर्घ एवं विस्तृत प्रांगण में कालचक्र अपने विविध रूपों विविध दृश्यावलियों और विविध सज्जाओं का प्रदर्शन करता हुआ अजस्त्र गति से बढ़ते रहता है। न जाने कितने प्रसून खिलते हैं और अनन्तोगत्वा भू-गर्भ में विलीन हो जाते हैं।

एकमात्र कीर्ति और कृति ही मनुष्य को अमरत्व प्रदान कराती है। इस पद्यानुवाद के प्रणेता पं० चिरजी लाल शर्मा वास्तव में कीर्ति और कृति दोनों के ही धनी थे। विद्वज्जन तथा कर्मकांडी पंडितों में 'शर्मा जी' का नाम बड़ी ही श्रद्धा के साथ लिया जाता था राँची में ही वरन् राँची के बाहर भी पंडित जी अपनी कीर्ति-पताका स्थापित करने में सदैव ही समर्थ रहते थे। आज भी उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है।

आशु कवित्व

आशु कवित्व तो मानो पंडित जी के जन्म के साथ ही रहा हो। चलते फिरते व्यंग्यार्थक दोहे कहना तो उनका रोजनामचा ही था।

उदाहरणार्थ

पहले घी से सब्जी बनती थी अब सब्जी से घी बनता है।
पहले औरत जनती थी अब सारा भारत जनता है॥

निरभिमान व्यक्तित्व

पंडित जी के आचरण, व्यवहार और बोली में कभी भी कहीं भी अभिमान की पुट नहीं होती थी। स्वरचित लेख, कविताओं में भी अपने से छोटे व्यक्ति से भी राय लेने में कदापि नहीं हिचकते थे और इसे महद्कार्यं ही समझते थे।

भारतीय सभ्यता, स्वतन्त्रता के पक्षधर

पं० शर्मा जी भारतीय सभ्यता संस्कृति और स्वतन्त्रता के प्रवल पक्षधर थे। अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन में इन्होंने भी अपनी रचनाओं से पूर्ण सहयोग दिया था, देते थे। इनकी रचनाओं की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

जाग उठे हैं नर नारी
इनको कौन सुलायेगा
इस धरती पर अंग्रेजो का
अब चरण न रहने पायेगा
हर हर बम बम ... हर हर बम बम।
धन्य धन्य है भारत वर्ष ...।

व्यक्तित्व

नाटा कद, लम्बी नाक, धोती कुरता, सिर पर नौकानुमी टोपी और ललाट पर चमकता रोली का टीका। यह था—पं० चिरंजी लाल शर्मा का चित्रमय चलता फिरता व्यक्तित्व।

जन्म–शिक्षा

पं० शर्मा जी का जन्म नवलगढ़ (राजस्थान) स्थित गौड ब्राह्मण वंश में आषाढ़ शुक्ला–११ विक्रम संवत १९६२ में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० वंशीधर शर्मा था। इनके पूर्वज संस्कृतज्ञ एवं ज्योतिष के प्रकांड पंडितों में थे। वे राजघराने के पंडित माने जाते थे। पं० शर्मा जी की शिक्षा दीक्षा उनके सुयोग्य संस्कृतज्ञ पितामह श्री श्रीनारायण शर्मा के संरक्षण में हुई। चिरंजी लाल जी ने संस्कृत व्याकरण साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया। पश्चात १९४१ ई० में (रीगल कालेज आफ फिजिशियन) से आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की। इसके साथ-साथ विद्वद्रत्न, ज्योतिष भूषण आदि उपाधियों से संमानित हुए। राँची नगरी में पंडित जी एक अच्छे कर्मकांडी माने जाते थे। संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी साहित्य में भी इनका योगदान सर्वदा मिलता रहता था।

कवि सम्मेलनों में अपनी अनूठी शैली से अपनी प्रतिभा से लोगों को हँसाने में और मन्त्रमुग्ध करने में 'शर्माजी' वेजोड़ थे।

इनकी यह कृति श्री गीता हिन्दी पद्यानुवाद "धर्मप्रेमी एवं हिन्दी भाषा भाषियों के लिए एक रस-घट के समान है।
और शर्मा जी की काव्य प्रतिभा का एक नमूना भी है। चौपाई, छन्द, दोहा, आदि की विविधता ने तो सचमूच ही स्थान-स्थान पर रस का अभिवर्षण किया है। विज्ञ पाठक ही इसका निर्णय करेंगे। ऐसी आशा है।

पुनश्च कीर्ति और कृति ही मनुष्य को अमरत्व प्रदान कराती है। आज प० चिरंजी लाल शर्मा का नश्वर शरीर हमारे बीच नहीं है। उनका देहावसान २८ दिसम्वर १९७० को हो गया लेकिन जव तक उनकी कृति रहेगी वे रहेंगे।
एक कवि के शब्दों में—

तुम अब भी खड़े यहीं हो
सुधियों के दरवाजे,
माना
एक चित्र है गिरा मेज से
और शीशा चटक गया है
एक फूल टहनी से
भटक गया है
पर अब भी गूँज रही है
कानों में आवाजें।

— भागीरथ शर्मा



स्व० पंडित चिरंजी लाल शर्म्मा



स्व० श्रीमति बरजी देवी
(धर्मपत्नी स्व० चिरंजी लाल शर्मा)

—: वंदना :—

नित नमस्कार हम करते हैं
गीता के बनानें वाले को।
गीता के बनाने वाले को
भक्तों के बचानें वाले को॥

जो चक्र सुदर्शनधारी है,
अर्जुन रथ का रखवारी है।
रण में गीता का ज्ञान दिया,
गांडीव चलाने वाले को॥१॥ नि०

जो मुक्ति मार्ग दिखाया था,
पारथ का मोह मिटाया था।
जो कर्म-योग उपदेश दिया,
सतपथ दर्शानेवाले को॥२॥ नि०

इस मोह-जाल के फंदों में,
फस छल-छिद्रों के धधों में।
करुणाकर भक्त पुकार रहे,
दुःख दर्द मिटाने वाले को॥३॥ नि०

आवो घनश्याम! यहाँ आवो,
भारत के कष्ट मिटा जावो।
कर जोड़ "चिरंजी लाल" कहे,
युग-युग में आने वाले को॥४॥ नि०



अमर-संदेश

अमर संदेश गीता का सुनो लोगों सुनाते हैं।
कृपा कर ज्ञान का भगवान यह अमृत पिलाते हैं।।

अठारह रत्न गीता के तो यह संसार पाया है।
अलौकिक ज्ञान वेदों का भरा भंडार पाया है।।
जिसे योगी सजाकर ज्ञान की माला बनाते हैं ।।१।। अ०

तजो अज्ञान आलस को, बनो कर्मिष्ठ योगी तुम।
करो संतोष को धारण बनो हरगीज न भोगी तुम।।
कहा श्री कृष्ण अर्जुन को, यही रण में बताते हैं ।।२।।

अहिंसा प्रेम सतपथ के, पथिक हो शील व्रतधारी।
रहो निर्बैर निर्भय से, बनो त्यागी सदाचारी।।
बजाकर ज्ञान का डंका, जगत सोया जगाते हैं ।।३।। अ०

श्री गीता ज्ञान दीपक से अंधेरा दूर करती है।
वो माया-मोह-ममता का सकल दुःख दूर करती है।।
"चिरजी" भक्तजन प्यारे अजय सुख शान्ति पाते हैं ।।४।।

अमर संदेश गीता का सुनो लोगों सुनाते हैं।



॥ गीता को शत-शत नमस्कार ॥

१

जो सद्ग्रन्थों में अग्रगण्य, अध्यात्मवाद की दीव्य ज्योत ।
जगमग जलती कल-कल करता वहता है जिसमें ज्ञान श्रोत ॥
वह आज विश्व को प्राची से, अध्यात्म प्रकाश दिखाती है ।
और रक्त-पिपासु मानव को, सुखमय संदेश सुनाती है ॥
विद्वेश हरो, सद्भाव भरो, तज वर्ग भेद मिल करो प्यार ।
कल्याण विश्व का निहत जहाँ गीता को शत्त-शत्त नमस्कार ॥

२

युद्धस्थल में गुरुजन को लख, जब कौन्तेय घबराया था ।
घनघोर घटा सा उमड़-घूमड़, ममता का बादल छाया था ॥
वो वीर धनुर्धारी अर्जुन, कर शस्त्र त्याग था खड़ा हुआ ।
मानो राहु के पंजे में, अज्ञान निशाकर पड़ा हुआ ॥
नहीं युद्ध करुंगा हे माधव ! स्वजनों से, कहता बार-बार ।
तो प्रगट हुई समरांगण में, गीता को शत-शत नमस्कार ॥

३

कृष्ण किरिटी को कायर कर्त्तव्य कर्म से हटा हुआ ।
देखा ममता माया में हो मोहित मतवाला टुटा हुआ ॥
तो रह न सके भगवान, भक्त को रण-भूमि में समझाया ।
दे आत्म ज्ञान उस प्रथा पुत्र को शर धनु धारण करवाया ॥
तो भभक उठी रणचडी रण में कूद पड़ा कर-कर हुंकार ।
भगवान कृष्ण की प्रियवाणी गीता को शत-शत नमस्कार ॥

४

तेरे उच्चादर्शों की भी गाँधी जी पर छाप पड़ी ।
हो विश्व वंद्य वो नर वरेण्य लाकर स्वतत्रताकरी खड़ी ॥

सब टूट गये अब भारत के दासत्व वेड़ियों के बंधन ।
किन शब्दों में हे अमर ग्रन्थ ? मैं करूं तुम्हारा अभिनन्दन ॥
शंकर, मधुसूदन, तीलक वीर, सब धन्य हो गये भाष्यकार ।
टीका कारो की प्रिय पुनित गीता को शत-शत नमस्कार ॥

५

तेरे मंत्रो की शक्ति ने कर दिये अनेको वलिदानी ।
पावन स्वतत्रता संगर के वन गये धुरंधर सेनानी ॥
जब "क्लैव्यं मास्मगमः पार्थं" घर-घर में गुंजर उठा ।
तो अंगड़ाई ले भारत का वो सुप्तसिंह हुंकार उठा ॥
वढ़ चले वीर तज आत्म-मोह जय हो स्वदेश कर कर पुकार ।
इस स्वतंत्रता की देवी जो गीता को शत-शत नमस्कार ॥

---

* गीता-गौरव *

गीता हरिमुख कमल से निकली सुधा की धार है ।
पीकर जिसे अमरत्व पाया मोक्ष पद संसार है ॥१॥

जब उपनिषद् गोरुप को दूहने लगे भगवान हैं ।
झट वत्स वनकर पार्थ ने पियूष किन्हा पान है ॥२॥
जीना उसी का धन्य है गीता पढ़े जो चाव से ।
वह पार भवसागर करेगा बैठ गीता नाव से ॥३॥

गीता परा-शुचि-ब्रह्म विद्या तत्व ज्ञान प्रकाशती ।
मद-मान-मस्तर-मोह-ममता-द्वेप सारे नासती ॥४॥

यह विश्व को शुभज्ञान का भण्डार प्रभु की देन है ।
इस ज्ञान से मानव धराके पायगें सुख चैंन है ॥५॥

मिलती रहेगी प्रेरणा युग-युग को गीता ज्ञान से ।
उत्थान उसका हो गया जिसने पढ़ी यह ध्यान से ।।६।।

जो गुंजते नित नियम से गीता ध्वनी से धाम है ।
उनमें सदा ही वास करते प्रेम से घनश्याम हैं ।।७।।

इस पुण्य गीता शास्त्र को जो प्रेम से नित गायेंगे ।
सुख भोगकर इस लोक में, परलोक में सुख पायेंगे ।।८।।



—: नमस्काराष्टक :—

पंगु लघयते शैलं मूकमावर्त्तनेश्रुतिम् ।
यत्कृपातमहं वंदे कृष्ण चैतन्यमिश्वरम् ।।

मूक बोलने लगे कृपा से पंगु करै गिरिवर को पार ।
माधव परमानन्द प्रभु को नमस्कार है वारम्वार ।।१।।

दिया सारथी बन अर्जुन को नव गीता अमृत का सार ।
पूर्णकाम सुखधाम श्याम को नमस्कार है वारम्बार ।।२।।

कंस और चाणूर विनाशक वासुदेव हे कृष्णमुरार ।
देवकी नन्दन जगद्गुरु को नमस्कार है वारम्वार ।।३।।

वागधरे अश्वों की कर में रथ पर सेना बीच सवार ।
अर्जुन को समझानेवाले नमस्कार है वारम्वार ।।४।।

दीनबन्धु भवसिन्धु पोत सुर सेवित रक्षक हे करतार ।
जगदीश्वर के चरणकमल में नमस्कार है वारम्बार ।।५।।

शरणागत के पारिजात तरू ज्ञान रूप चावक कर धार ।
गीतामृत दुहने वाले को नमस्कार है वारम्वार ॥६॥

जिसने गीता ज्ञान दीप से आलोकित किन्हा संसार ।
परम तपस्वी व्यास देव को नमस्कार है वारम्वार ॥७॥

धन्य देश वो धन्य धरा है धन्य चिरजी नर और नार ।
करते गीता पाठ कृष्ण को नमस्कार है वारम्वार ॥८॥



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री कृष्ण - गीता

मंगलाचरणम्

☆

श्रीकृष्ण चन्द्रस्य पदार विन्दम् । ध्यात्वा इदि पार्थधनुर्धरं च ॥
ययोः स्मृतिर्मोहमयं किलेमं । संसार कूपारमपा करोति ॥
चकास्ति रांची लघुनाम पुर्य्यां । रम्यापुरीसा च बिहार प्रान्ते ॥
तत्राऽस्ति वेद स्मृति पारग श्री । नारायणाख्यो द्विजराजवर्यः ॥
तत्सूनु वंशीधर नाम धेयः । तदात्मजो विज्ञ चिरजी लालः ॥
तन्वे स्वदेशीय जनार्थवोधे । च्छन्दो निवन्धार्थमयी सुगीताम् ॥

सोरठा

वंदौ श्री गणराज, विघ्नहरण मंगल करण ।
करउ सिद्ध सव काज, गौरी सुत ! निज दास के ॥१॥

वन्दउ श्री घनश्याम, दया सिन्धु तारण-तरण।
वारम्बार प्रणाम, कमल नयन के चरण में ।।२।।
चक्र सुदर्शन धार, अर्जुन रथ के सारथी।
अखिल विश्व करतार, नमन करूँ कर जोड़ के ।।४।।

चौपाई

त्रिगुणातीत ब्रह्म अविनाशी। सगुणरूप जिन सृष्टि प्रकाशी।
ब्रह्मा-विष्णु-शभु शुभकारी। जिनकी महिमा वेद उचारी ।।४।।

५

ब्रह्माणी-रूद्राणी-वाणी। आदिशक्ति मां कमलाराणी ।।
नारद मुनि सनकादि मरीची।
कश्यप, कौशिक, कण्व, दधीची ।।

६

वाल्मीकि, शुक, शोनक, ध्यानी।
भारद्वाज, वशिष्ठ, सुज्ञानी ।।
याज्ञवल्क्य, पारांशर, व्यासा।
करि त्रिभाग जिन वेद प्रकाशा ।।

७

करो वन्दना नित कर जोरी।
बालक अबुद्ध अल्प मति मोरी ।।
वंदौ दीनबन्धु रघुवीरा।
पुनि प्रकटे धरि कृष्ण शरीरा ।।

८

वन्दौ कपिवर पवन कुमारा।
जो अर्जुन रथ ध्वज रखवारा ।।

वन्दौ भीष्म देव व्रतधारी ।
जिनहिं लागि प्रण तजा मुरारी ॥

९

वन्दौ धरमराज के चरण ।
जो श्रुति पंथ सत्य आचरण ॥
वन्दौ भीमसेन शुभकारी ।
दश सहस्त्र गजकर बलधारी ॥

१०

वन्दौ पारथ वीर महाना ।
जिनका सारथी श्री भगवाना ॥
वन्दौ माद्री सुत बलवाना ।
नकुल और सहदेव सुजाना ॥

११

द्रुपद सुता कुन्ती महतारी ।
जिन घर पुत्र देव अवतारी ॥
नभ भू अरू पाताल निवासी ।
वन्दौ सकल देव गुण रासी ॥

१२

परसों गुरू जन चरण महाना ।
गुण गरिमा गति ज्ञान निधाना ॥
करन चहहुं गीता अनुवादा ।
देहु मोहि मति विमल प्रसादा ॥
सेना सेनापति नांच गणना समरांगणे ।



॥ श्री हरिः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

* श्री कृष्ण - गीता *

★ पहला अध्याय ★

—: अर्जुन - विषाद :—

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

दोहा— इन्द्र प्रस्थ प्रासाद में, बैठे करत विचार ।
संजय से धृतराष्ट्र ने, पूछा वचन उचार ॥
धर्म-धरा कुरुक्षेत्र में, सजि संजय ! संग्राम ।
कौरव-पाण्डव क्या किया, मिलकर दोनों काम? ॥१॥
धर्म-धाम कुरुक्षेत्र में, सजि सजय रण साज ।
मेरे अरु पांडव सुवन, कहो किया क्या ? काज ॥२॥

छंद–संजय कहा पाण्डव-कटक लखि विकट भट व्यूह साज है ।
गुरु द्रोण के जाकर निकट झट यों कहा कुरु राज है ॥३॥
आचार्यवर ! करिये निरक्षण, सैन्य प्रवल महान है ।
कैसा रचा व्यूह द्रुपद सुत, तव शिष्य बुद्धिमान है ॥४॥

चौपाई— अर्जुन भीम सरिस वलवाना ।
है अनेक रण कुशल निदाना ॥
महारथि अति द्रुपद विशाला ।
नृप विराट सात्यकी कराला ॥

धृष्टकेतु, शिवपुरी नरेशा ।
चेकितान बलवान प्रजेशा ।।
पुरुजित, कुन्तिभोज, प्रतिराऊ ।
शैव्य धीर जग प्रकट प्रभाऊ ।।५।।

युधामन्यू उतमौजा वीरा ।
अभिमन्यू भटवर रणधीरा ।।
द्रुपदनंदिनी के वलकारी ।
महारथी पाचो सुतभारी ।।६।।

अब निज पक्ष कहहुं मैं स्वामी ।
मुख्यवीर जो मम अनुगामी ।।
उनकर नाम सुनहु हे नायक ! ।
सब विधि कुशल दक्ष धनुशायक ।।७।।

आप भीष्म अरु कर्ण प्रजेशा ।
कृपाचार्यं सज्जित रण वेशा ।।
नृप विकर्ण अरु अश्वत्थामा ।
भूरिश्रवा विपुल बलधामा ।।८।।

अन्य वीर वहु मम हित लागी ।
ममता सव प्राणन कर त्यागी ।।
विविध अस्त्र-शस्त्रन कँह साजे ।
सकल विशारद अति रण राजे ।।९।।

रक्षित भीष्म पितामह भारी ।
है अजेय यह सैन्य हमारी ।।
भीमसेन रक्षित वह दल है ।
जीतन योग सुगम निर्बल है ।।१०।।

अतः सकल भट मिलकर भाई ।
डटहु मोरचा निज-निज जाई ॥
चहुं दिशि करहु पितामह रक्षा ।
विपुल पराक्रमी रण विधि दक्षा ॥११॥

दोहा — भीष्म केहरि गर्जकर, किया जो शंख निनाद ।
दुर्योधन भूपति हिये, उपजाते आह्लाद ॥१२॥

चौपाई — बाजन लागे ढोल मिरदंगा ।
शंख भेरीं गोमुख नरसिंगा ॥
एक साथ अति शब्द भयंकर ।
मानों गरज उठा प्रलयंकर ॥१३॥

श्वेत अश्वयुत रथ दृढ़भारी ।
बैठे अर्जुन कृष्ण-मुरारी ॥
उभय अलौकिक शंख बजाया ।
मानहु जय संदेश सुनाया ॥१४॥

माधव पाँचजन्य करि वादन ।
अर्जुन देवदत्त ध्वनी साधन ॥
महाशंख पौंड्रहु ध्वनी कीना ।
भीम बृकोदर समर प्रवीना ॥१५॥

विजय अनंत युधिष्ठीर राजा ।
धोषेउ शंख करन जय काजा ॥
मणि पुष्पक सुघोष मनभावा ।
नकुल अवरि सहदेव बजावा ॥१६॥

काशीराज धनुधर वड योधा ।
वीर शिखंडी अति वल बोधा ।।
धृष्टद्युमन विराट भट भारी ।
अटल सात्यकी प्रवल प्रहारी ।।१७।।

द्रुपद द्रौपदी के सुत पाँचा ।
अभिमन्यू विशाल भुज राँचा ।।
राजन ! अति उत्साह दिखावा ।
पृथक्-पृथक् निज शंख बजावा ।।१८।।

शव्द भयानक नभ भू व्यापा ।
हिय विदारि कौरव संतापा ।।
मानहु मेघ गर्जना करहीं ।
धुनि सुनि कायर जन अति डरही ।।१९।।

दोहा —देखा सज कौरव खड़े, वांधे व्यूह विशाल ।
शस्त्र चलाने के समय गाँडीव लिया संभाल ।।२०।।
अर्जुन बोला कृष्ण से, जोड़ प्रेम से हाथ ।
दोनों दल के मध्य रथ, खड़ा कीजिए नाथ ।।२१।।
मैं भी तो देखूं जरा, कौन-कौन वलधाम ।
किन-किन वीरों से मुझे, करना है संग्राम ।।२२।।
दुर्योधन दुर्बुद्धि का, जो चाहत कल्याण ।
नृप गण आये समर मँह, सजे सैन्य वलवान ।।२३।।

चौपाई—वोले संजय सारंगपानी ।
राजन ! सुन अर्जुन कर वाणी ।।
झट चलाय अश्वन कँह दीन्हा ।
दोउ दल मध्य खड़ा रथ कीन्हा ।।२४।।

प्रभु बोले लखु नजर पसारी।
पारथ ! यह कौरव भटभारी।।
भीष्म द्रोण गुरु अन्य भुवाला।
सन्मुख खड़े गहे शर भाला।।२५।।

पिता पितामह गुरु सुत भाई।
मातुल पौत्र वन्धु समुदाई।।
खड़े सकल देखा रण मांहीं।
जो गति भई सो; कही न जाही।।२६।।

श्वसुर सुहृद बंधू दोउ दल में।
किन्ह निरक्षण चहूं दिशि पल में।।
देखि हिये दारूण दुख व्यापा।
रोम-रोम अति भा संतापा।।२७।।

हो विषाद पारथ मन डोला।
प्रभु सन दीन वचन अस बोला।।
रण हित खड़े स्वजन समुदाई।
इन संग केहि विधि करौ लड़ाई।।२८।।

शिथिल अंग रोमांचित गाता।
मुख सूखत निकसत नहीं बाता।।
थर-थर काँप रहासि तन सारा।
दीखत मग नहीं सूझत पारा।।२९।।

अहा ! गिरत गांडीव मम करते।
त्वचा जलत मानहुं अति ज्वर ते।।
धड़कत हृदय कंप मन भाई।
खड़ा रहूं अस वल कछु नांई।।३०।।

केशव ! विकट समस्या आई ।
चाहत लड़न बंधु समुदाई ।।
यह लक्षण विपरीत लखावै ।
स्वजन मारि कहु ? को सुख पावै ।।३१।।

कृष्ण ! चाहना नही विजय की ।
विपुल राज्य वैभव अतिशय की ।।
इन्हें पाय का करब गुसाई ।
जीवन भोग महा दुखदाई ।।३२।।

जिनके अर्थ राज सुख भोगा ।
इच्छा करत रहे हम लोगा ।।
वे सब खड़े प्राण धन त्यागे ।
उन संग आज लड़न हम लागे ।।३३।।

गुरुजन बृद्ध पितामह मामा ।
संवन्धी जन प्रिय सुखधामा ।।
चाचे, श्वसुर, पौत्र, सुत, साले ।
समर लागि ठाढ़े मतवाले ।।३४।।

दोहा— वधकर बन्धु न चाहिए, मुझे त्रिलोकी राज ।
यह मारे तो भी नहीं, लड़ू धरा के काज ।।३५।।

चौपाई - दुर्योधन आदिक सहारी ।
कहहु मोद का होय मुरारी ।।
हैं यह आततायी पर मारे ।
निश्चय लगिहें पाप हमारे ।।३६।।

नहिं हमार माधव ! यह जोगू ।
स्वजन मार किमि भोगव भोगू ।।

उचित नहीं अनुचित वध भारी ।
का फल मिले स्वजन संहारी ।।
राज्य लोभ ते गई मति मारी ।
देखत दोष न नाश विचारी ।।३७।।

यद्यपि भ्रष्ट लोभ मन रोषा ।
कुल नाशक देखत नहीं दोषा ।।
धर्म अधर्म तनिक नहीं मानैं ।
मित्र द्रोह जनि पातक जानैं ।।३८।।

किन्तु जनार्दन ! हम अध जानत ।
कुल नाशक दोषन को मानत ।।
करहिं क्यों न हम बैठि विचारा ।
रूके जौन विधि नर संहारा ।।३९।।

(४०)

छंद— कुल का सनातन धर्म तो कुल नष्ट होते जायगा ।
जब धर्म जायेगा तो कुल को पाप आन दबायगा ।।

(४१)

जब पाप बढ़ जाये तो बिगड़ै नारियां उस वंश में ।
हे कृष्ण ! उनसे वर्ण संकर जन्म ले सब अंश में ।।

(४२)

वे वर्ण संकर साथ कुल के नरक में निश्चय गिरै ।
जब लुप्त पिण्डोदक क्रिया हो तो पितर कैसे तिरै ।।

(४३)

कुल नाशको के वर्णं संकर पाप के लवलेश से ।
कुल-धर्म जाति वो सनातन धर्म मिटता देश से ।।

(४४)

चौपाई— नष्ट होय जिनकर कुल-धर्मा ।
बढ़त पाप घर नीच कुकर्मा ।।
नर पापी नरकन मँह जावै ।
सुना घोर तँह अति दुःख पावै ।।

दोहा— अहा ! खेद उद्यत हुए, करने पापाचार ।
राज्य लोभ से हम रहे, सम्बन्धिन को मार ।।४५।।

शस्त्र रहित मुझ पर करें, कौरव शस्त्र प्रहार ।
इसमें भी कल्याण है मैं न करू प्रतिकार ।।४६।।

संजय बोला पार्थ यों, कहकर शर-धनु डार ।
रथ के पिछले भाग में, बैठ गया मन मार ।।४७।।

श्री कृष्ण अर्जुन संवाद में विषाद योग का
पहिला अध्याय समाप्त हुआ ।।१।।

(श्यामसुन्दर कृष्णचन्द्र की जय)



❋ श्री कृष्ण - गीता ❋

★ दूसरा अध्याय ★

सांख्य योग

(१)

दोहा— संजय तब धृतराष्ट्र से बोले वचन संभाल।
व्याकुल करूणा शोक से पार्थ हुआ बेहाल।।
झर-झर दृग असुवन झरे थर-थर काँपत गात।
देख दशा कौन्तेय की कही कृष्ण यह बात।।

(२)

चौपाई— विकट समय तोहि अस अज्ञाना।
केहि विधि हुआ कहहु ? बलवाना।।
नहीं आर्यजन कर यह लायक।
नाशक स्वर्गरू अपयश दायक।।

(३)

पार्थ ! नपुंशकपन मत धारो।
यह नहीं तेरे योग विचारो।।
तुच्छ हृदय कर दुर्बलताई।
त्यागहु वीर ! डटहु रण मांई।

(४)

अरजुन कहा सुनहु मधुसूदन !
भीष्म द्रोण लायक है पूजन।।

इनपर केहि विधि शस्त्र उठाऊँ।
जिन चरणन नीत शीश नवाऊँ।।

(५)

छन्द - गुरु वृद्धजन को मारकर, यह राज्य पाना हेय है।
इससे भला तो भीख द्वारा पेट भरना श्रेय है।।
चित्कार करूणा रूदन अरू दुख दर्द आहो के बने।
यह अर्थ कामादिक सकल है भोग शोणित के सने।।

(६)

हमलोग यह नहीं जानते कर्त्तव्य क्या ? करना पड़े।
होगी पराजय जीत याके मारना मरना पड़े।।
मारकर जीनको न हम जीना कभी चाहते नहीं।
सन्मुख खड़े कुरू-वृन्द हैं वे ही समझ जाते कहीं।।

(७)

कायर पने के दोप से निज भाव सारा खो गया।
अरू धर्म से अति मूढ़ मेरा चित देखो हो गया।।
मैं पूछता हूं शिष्य वन भगवान ! शिक्षा दीजिए।
आथा शरण मैं आपकी कल्याण मेरा कीजिये।।

(८)

धन-धान्य युत भूपर सदा निष्कंट सारा राज्य हो।
आधीन में सुरलोक हो तो भी न पूरन काज हो।।
माधव ! यतन कोई न ऐसा दीखता भरपूर भी।
जो इन्द्रियों के सोखने वाले करैं दुख दुर भी।।

(९)

दोहा— संजय बोले पार्थ ने, कहा सुनहु गोपाल।
युद्ध करूँगा मैं नहीं, मौन हुआ तत्काल ॥

(१०)

चौपाई अर्जुन दशा विश्वपति जानी।
युद्ध विमुख मति यह कस ठानी ॥
उभय शैन्य विच हँसत प्रजेशा।
पारथ सन बोले हृषिकेशा ॥

(११)

कर अशोच्य कर चिन्ता ऐसी।
कहत बात ज्ञानी जन जैसी ॥
जिवित रहै कि कोउ नर मरही।
याको शोक विज्ञ नहिं करहीं ॥

(१२)

जेते नपगण समर मंझारा।
पहले जन्म सकल कहुं धारा ॥
कबहुक तुम हम भी है जनमे।
पुनि जनमब आगे लखू मन में ॥

(१३)

यथा बालपन वृद्ध जवानी।
भोगहि देह मध्य जिमि प्रानी ॥
तथा जीव दूसर तनु पावै।
धीर हृदय नहिं मोह सतावै ॥

(१४)

शीत - उष्ण - सुख - दुखकर दाता ।
इन्द्रिय भोग सकल है भ्राता ॥
यह अनित्य आवै अरु जावै ।
इन्हें सहन कर मत घबरावै ॥

(१५)

इनसे व्यथा नही हो जीनको ।
धीर पुरुष कहते हैं तीन को ॥
जो सुख - दुख महँ समता लावै ।
सो नर मोक्ष ब्रह्म पद पावै ॥

(१६)

नाश असत वस्तु निरधारा ।
किन्तु नहीं सत नाशन हारा ॥
अंत देखी ज्ञानी ठहरावै ।
तत्व ज्ञान यही भाँति बतावै ॥

(१७)

नाश रहित तुम वाको मानो ।
जासे व्यास सकल जग जानो ॥
नाश नहीं अविनाशी होई ।
नाश करण समरथ नहि कोई ॥

(१८)

नाश रहित अरु नित्य सरुपा ।
अप्रमेय जीवात्म अनूपा ।

नाशवान यह सकल शरीरा।
ताते युद्ध करहु तुम वीरा॥

(१९)

दोहा— जो यह जानत आत्मा मरा कि मारन हार।
किन्तु मरै नहीं मारता, दोउकर भूल विचार॥

(२०)

जन्म मरण से रहित है होकर भी पुनि होय।
देह वधे यह अज अमर मार सकै ना कोय॥

(२१)

चौपाई— अमर अजन्मा अव्ययी जाने।
अविनाशी जो नर पहिचाने॥
वे केहि काकहु ? घात करावैं।
अरु मारैं अस कस पतियावैं॥

(२२)

वस्त्र पुरातन जिमि नर त्यागी।
धारत नव-पट अति अनुरागी॥
तिमी यह जीव जीर्ण तनु त्यागै।
नव शरीर पावै पुनि आगें॥

(२३)

काटै नहिं शस्त्र समुदाई।
अरु पावक नहीं सकै जराई॥
कबहु सकै ना पवन सुखाई।
वारि सकै ना याहि गलाई॥

(२४)

कटहि न जलहि न शुद्ध सनातन ।
व्यापक सर्व अचल स्थिर आसन ।।
गर्लाहि न परम आत्म अविनाशी ।
नहीं सूखत कारण सुख राशी ।।

(२५)

इन्द्रिय देख सकत यहि नाईं ।
है अव्यक्त जानि नही जाईं ।।
अरु अचिन्त्य मानहु अविकारी ।
तजहु शोक यह बात विचारी ।।

(२६)

यहि कर जनम मरण यदि मानों ।
जन मत सरत सकल जग जानों ।।
तदपि न शोक करण कर हेतू ।
तजहु मोह पाँडव कुल केतू ।।

(७२)

जन्म लेहि जो निश्चय मरहीं ।
मरै जन्म पुनि धारण करहीं ।।
यामें जतन चलत कछू नाहीं ।
करत विचार वृथा मनमाहीं ।।

(२८)

माया रचित सकल तनुधारी ।
जग अनित्य है लेहु विचारी ।।

आदि अन्त जानें नहीं कोई ।
केवल मध्य प्रतिति होई ॥

(२९)

दोहा— लखि अचरज कोई करे, सुनकर अचरज कोय ।
कोइ कहत अचरज करे, सुनै ज्ञान ना होय ॥

(३०)

है अवध्य यह आत्तमा, व्यापक तनु सबलोक ।
याते करना चाहिये, प्राणिन का नहिं शोक ॥

(३१)

चौपाई— समुझि धरम निज भय परिहारो ।
करम उचित क्षत्रीन कर धारो ॥
सन्मुख रण चढ़ि छाड़ै प्राणा ।
यहिते बढ़कर नहीं कल्याणा ॥

(३२)

अपने आप मिला रण मानों ।
खुल गया द्वार स्वर्ग कर जानों ॥
भाग्यवान क्षत्रिय कोई पावें ।
भूतल पर अस समर वतावें ॥

(३३)

यदि ममता के बीच पड़ेगा ।
धरम-समर मँह नहीं लड़ेगा ॥
तो स्वधर्म शुभ कीरति नाशै ।
पाप लगै अरु सब जग हाँसै ॥

(३४)

अपयश अमिट सकल तब छावै ।
बदनामी जन घर - घर गावै ।।
सम्मानित नर का जग माई ।
अपयशते मरना भल भाई ।।

(३५)

महारथी सब वड़ा लड़ाका ।
मानत तोहि बली रण बांका ।।
वे हँसि कहियें तालि बजाई ।
पारथ रणते गया पलाई ।।

(३६)

वैरीजन तब निन्दा करिहैं ।
कहि कटु वचम मोद मन भरिहैं ।।
याते अधिक कवन दुख होई ।
करहु विचार धनंजय सोई ।।

(३७)

जिये राजसुख भोग करोगे ।
मिले स्वर्ग रण झूझि मरोगे ।।
याते दृढ़ मन निश्चय लाई ।
उठहु समर हित हिय हर्षाई ।।

(३८)

सुख-दुख लाभ न हानी मानों ।
हार-जीत मँह समता जानों ।।

तो नहिं पाप लगै धनुधारी ।
समुझि करहु रण कर तैयारी ॥

(३९)

दोहा — सांख्य योग यहि भांति, सुन कर्म योग का ज्ञान ।
युक्त होय जासे कटै, बंधन कर्म महान ॥

(४०)

दोष विघ्न वाधा न कछु, नहीं बीज का नाश ।
तनिक धर्म साधन किये, हरे सकल भव त्रास ॥

(४१)

चौपाई— कुरुनंदन ! यह सत्य विवेका ।
निश्चयात्मक बुद्धि येका ॥
बहुत बुद्धि अति शाखावाली ।
अज्ञ जानों की कही निराली ॥

(४२)

वेद वचन महँ भूला प्राणी ।
करत वाद बोले मृदु वाणी ॥
यति वढ़कर अरु कछु नाही ।
कर्म भला अस कह जग माही ॥

(४३)

जन्म-कर्म फल देवन हारी ।
कृपा विशेष स्वर्ग सुखकारी ॥

अति ऐश्वर्य भोग की दाता ।
कहहि कामना प्रिय जन बाता ।।

(४४)

अस वाणि सुन विषयसक्ता ।
मोहित भये भोग अनुरक्ता ।।
तो व्यवसाय बुद्धि अस मन की ।
समाधिस्थ नहीं होवें जन की ।।

(४५)

त्रिगुण विषय मय चारों वेदा ।
तृगुणातित बनो तजि खेदा ।।
हो निर्द्वन्द आत्तमा रामा ।
योग - क्षेम तजो बलधामा ।।

(४६)

पूर्ण जलाशय जिमि नर जावें ।
थोड़े जल निज प्यास वुझावें ।।
तैसेही विप्र प्रयोजन जाने ।
वेदन ते ले ज्ञान सयाने ।।

(४७)

कर्म मात्र का तू अधिकारी ।
नहीं कदापि फलका धनुधारी ।।
फल हेतू मत दोड़ कभी भी ।
किन्तु कर्म मत छोड़ कभी भी ।।

(४८)

त्यागी संग - फल - आस सुजाना ।
मानहु सिद्धि असिद्धि समाना ।।
हो योगस्थ कर्म करु पारथ ।
समता भाव हि योग यथा रथ ।।

(४९)

बुद्धि योग ते सुनहु धनंज्जय ।
सारे हीन कर्म है अतिशयं ।।
बुद्धि की लै शरण पियारे ।
जो फल इच्छुक दीन है सारे ।।

(५०)

अति समत्त्व बुद्धि जब आवै ।
सत्तकृत दुष्कृत्त कर्म नसावै ।।
योग - युक्त हो सुन धरि ध्याना ।
कर्म कुशलता योग बखाना ।।

(५१)

दोहा— ज्ञानी त्यागत करमफल, समबुद्धि से युक्त ।
पावत अमृत परमपद, जन्मबंध हो मुक्त ।।

(५२)

गहन मोह के मार्ग से, बुद्धि हो जब पार ।
तो सबसे वैराग्र हों, सुना सुनै चित धार ।।

(५३)

भ्रान्त हुइ सिद्धान्त से, बुद्धि निश्चल होय ।
तो सम बुद्धि योग से, सिद्धि मिलेगी तोय ॥

(५४)

चौपाई— अर्जुन सुन बोला केशव से ।
कहहु नाथ ! मोहि निज अनुभव से ॥
स्थिर - बुद्धि समाधि महँ बोलत ।
केहि लक्षण बैठत कस डोलत ॥

(५५)

बोले वचन कृष्ण समझावत ।
स्थिर-बुद्धि नर वही कहावत ॥
तजदे काम मनोगत सारा ।
रहि अपने महँ मगन अपारा ॥

(५६)

जो दुख पाय नहीं घबरावै ।
अरु सुख में नहीं हर्ष मनावै ॥
वीत राग भय क्रोध नसावै ।
स्थिर बुद्धि मुनि वही कहावै ॥

(५७)

जेहि शुभ अशुभ लाभ नही नेहा ।
हर्ष द्वेष नहीं व्यापत देहा ॥

स्थिर - बुद्धि वह ममता हीना ।
जिन्हें न व्यापत मोह क भीना ।।

(५८)

कच्छप सिमटी यथा निज अंगा ।
तथा सिमटि नर विषय प्रसंगा ।।
योगी इन्द्रिय - भोग नसावै ।
तव स्थिर - प्रज्ञ प्रतिष्ठा पावै ।।

(५९)

निराहार देहिन ते भाई ।
भोग शक्ति तो जाई नसाई ।।
किन्तु नही जावै रस तन से ।
जावै सुनो ब्रह्म दरशन से ।।

(६०)

प्रमथन-शील स्वभाव निदाना ।
महा प्रबल इन्द्रिय बलवाना ।।
जतन करत भी बुद्धिमान को ।
मनते इन्द्रिय हरत ज्ञान को ।।

(६१)

सकल इन्द्रिया वसमें करके ।
मत्पर सुस्थिर हो चित धर के ।।
वह बस में है जिनके भाई ।
स्थिर बुद्धि उनकी है जाई ।।

(६२)

दोहा — विषय चिन्तना से बढ़े भोग संग अविरोध।
बढ़ै संग से कामना और काम से क्रोध॥

(६३)

होत मोह है क्रोध से, मोह करे स्मृति भ्रष्ट।
स्मृति विना बुद्धि नसै, बुद्धि विना सब नष्ट॥

(६४)

इन्द्रिय निज वस में करे द्वेषन राग विषाद।
भोग किये पर भी विषय, पावै आत्म प्रसाद॥

(६५)

चौपाई — यह प्रसाद कर प्रकट प्रभाऊ।
सकल शोक कर होय अभाऊ॥
अति प्रसन्नमन वीच यथा रथ।
शीघ्र बुद्धि स्थिर हो चरितारथ॥

(६६)

साधन रहित पुरुष के जीय में।
सद्-बुद्धि प्रकटे नहीं हिय में॥
शान्ति बिना सद्भाव न आवै।
विना शान्ति सुख कवहु न पावै॥

(६७)

सकल विषय इन्द्रिन मँह बिचरे।
तिन कह संग सदा मन विहरे॥

नाश देत वह बुद्धि पल में।
हरत पवन जिमि नौका जल में॥

(६८)

इन्द्रिय सकल सुनहु हे भाई।
विषय राग ते जब हट जाई॥
बस जिनके सब इन्द्रिय होई।
स्थिर बुद्धि जानहु नर सोई॥

(६९)

जो प्राणिन की रात कथन है।
तामँह जागत योगी जन है॥
जामँह जागत जीव सही है।
मुनी-जन की तो रात वही है॥

(७०)

छन्द—जैसे अचल परिपूर्ण सागर मँह नदी सब जावही।
पर उदधी विचलित कर सकैना आप जाय समावही॥
तैसे विषय जिस पुरुष मँह सारे समाते जायकर।
वह शान्ति पाता है, न पाता काम कभी अज्ञनर॥

(७१)

अभिमान, इर्ष्या, द्वेष, ममता।
कामना सब त्याज्य हो॥
उनकर्म विरो के हृदय —।
सुख शान्ति का साम्राज्य हो॥

(७२)

हे पार्थ ! यह उनकी स्थिति ।
जो ब्रह्म पद को पावहि ।।
नही अन्त में हो मोह वस ।
निर्वाण ब्रह्म समान्हि ।।

(श्री कृष्ण गीता का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ)



* श्री कृष्ण - गीता *

★ तीसरा अध्याय ★

(१)

दोहा— अर्जुन बोले कृष्ण से, सुनिये श्री भगवान ।
यदि कर्मों से मानते आप श्रेष्ट हैं ज्ञान ।।
तो फिर मुझको क्यो करो ? घोर कर्म में लीन ।
समाधान यह कीजिए, मुझे जानकर दीन ।।१।।

सोरठा— बुद्धि में भ्रम डार बात कही सन्देह की ।
हो जिससे उपकार एक बात निश्चय कहो ?।।२।।

अर्जुन सुन धरि ध्यान बोले श्री जगपति ।
पहले करी बखान जग में निष्ठा दोय में ।।
योगी जन की जान, कर्म योग निष्ठा विमल ।
ज्ञान योग परमान, निष्ठा ज्ञानी जनन की ।।३।।

चौपाई— विन आरम्भ कर्म के भाई ।
नहि निष्कर्म पुरुष है जाई ।।
अरु कदापि सब कर्म विहाई ।
सिद्धि नर कोई पावत नाई ।।४।।

इक पल मात्र कर्म बिन होई ।
जग मँह रह न सकै ना कोई ।।
परबस हो करें सब करमा ।
पुरुष सदा प्रकृति गुण धरमा ।।५।।

कर्मेन्द्रि रोकि अज्ञानी ।
चिन्तन विषय करैं अनआनी ।।
इन्द्रिय लिप्त मूठ छलकरी ।
वाको बोलत मिथ्याचारी ।।६।।

सकल इन्द्रिया मनवस करके ।
आसक्ति सब चित की हरके ।।
कर्म कर्म - इन्द्रिय ते करते ।
नहीं श्रेष्ठ कोउ अस नर ते ।।७।।

नियत कर्म कर सोच हिये ते ।
करना उत्तम नहीं किये ते ।।
नित कर्त्तव्य कर्म है जनका ।
विना कर्म निर्वाह न तनका ।।८।।

यज्ञ बिना सुन बात हमारी ।
सकल कर्म है बंधनकारी ।।
ताते संग रहित यज्ञरथ ।
कर्म करहु सवहे प्रिय पारथ ? ।।९।।

प्रजा यज्ञ कर सहित बनाकर ।
कही विधाता सबहि जनाकर ।।
मख है पूर्ण मनोरथ कारी ।
अभ्युदय याते हो भारी ।।१०।।

दोहा— करहु यज्ञ से तुष्ट सुर वे तोहि पौषे आन ।
रखहु परस्पर भाव सुचि, हो निश्चय कल्यान ।।११।।
देव यज्ञ से तुष्ट हो दैहे इच्छित भोग ।
उनकर दिया न दे उन्हें भोगत पामर लोग ।।१२।।

यज्ञ शेष भोजन करैं वे जन हो निष्पाप।
जो पकात निज पेट हित, पाप भोगते आप ॥१३॥

पैदा सकल अन्नते प्राणी।
उपजत अन्न मेघते ज्ञाणी ॥
सफल यज्ञ ते वर्षहि वारी।
होत कर्म ते यज्ञ सुखारी ॥१४॥

होवत कर्म ब्रह्म ते सारे।
ब्रह्म रुप अक्षर ते धारे ॥
सब जग व्यापक ब्रह्म बखाना।
रमत यज्ञ मँह अचल महाना ॥१५॥

यहि विधि धर्म चक्र अनुसारी।
चलै न पारथ जो नर नारी ॥
इन्द्रिय लंपट धर्मं विहीना।
उनकर वृथा जगत मँह जीना ॥१६॥

तृप्त आत्मा मँह जो रहहीं।
अरू दिन रात आत्म सुख लहही ॥
नहीं कर्त्तव्य शेष जग मांही।
उनकह सुन दुर्लभ कछु नाहीं ॥१७॥

नहीं कछु लाभ किये न करेते।
नहीं सुख दुःख जिये न मरेते ॥
सब जीवन मँह वह निश्वारथ।
करै प्रयोजन बिनु परमारथ ॥१८॥

तज आशक्ति पाण्डु कुलकेतू।
करहु कर्म कर्त्तव्य सचेतू।।
अनासक्त नर करै जो कामा।
पावै मोक्ष परम सुख धामा।।१६।।

कर्मन ते जनकादिक ज्ञानी।
परम सिद्धि पाई सुख खानी।।
अतः लोक संग्रह लखि वीरा।
करना उचित कर्म बनि धीरा।।२०।।

श्रेष्ठ पुरुष जो कछु आचरहीं।
ईतर देखि उनकर अनुसरहीं।।
जो प्रमाण करले मन माई।
जन कर लेत मान्य तेहि भाई।।२१।।

दोहा— पार्थ ! मोहि कर्त्तव्य कछु तीन लोक में है न।
अरू दुर्लभ वस्तुन पर कर्म करूं दिन रैन।।२२।।
सावधान होकर यदि कर्म करूं मैं नाय।
तो तेरा अनुकर्ण सबलोग करेगें धाय।।२३।।

चौपाई— यदि यह कर्म करूं मैं नाई।
तो सबलोग भ्रष्ट ह्वै जाईं।।
अवरी वर्ण सकर अजाऊँ।
सकल प्रजाकर नाश कराऊँ।।२४।।

मुरख जन जिमि कर्मासक्ता।
करैं कर्म नित हो अनुरक्ता।।
तिमि विरक्त हो कर्मसु ज्ञानी।
करहि लोक संग्रह हीत जानी।।२५।

कर्मासक्त मूढ़ मनमाँही ।
पंडित जन भ्रम डारैं नाही ।।
उनते भी शुभ कर्म करावैं ।
निज आचरैं न कभी दुरावैं ।।२६।।

सकल कर्म प्रकृति गुण द्वारा ।
होवत है मन करहु विचारा ।।
मूढ़-मनुज निज में, नहीं जानी ।
कर्त्तापन मानत अभिमानी ।।२७।।

जो जानत गुण कर्म विभागा ।
नर तत्त्वज्ञ ज्ञान अनुरागा ।।
गुणकर खेल गुणन मँह जानत ।
आसक्ति नहीं मनमँह आनत ।।२८।।

मोहित हुये प्रकृति गुण धर्मा ।
अति आसक्त होई गुण कर्मा ।।
अस मूढ़न को विचलित ज्ञानी ।
कबहु न करैं कर्म ते जानी ।।२९।।

ज्ञान दृष्टि ते मोहिमंह प्यारे ।
अर्पण कर सब कर्म तिहारे ।।
आशा ममता देहु हटाई ।
निर्भय लड़हु समर मँह जाई ।।३०।।

दोष बुद्धि तज श्रद्धा युक्ता ।
बरतहि होई सदा अनुरक्ता ।।
मम अनुसार रहे नर सोई ।
बंधन मुक्त कर्म ते होई ।।३१।।

मूढ़ न मानत जो मत मेरा ।
दोष - दर्शी अज्ञानहि प्रेरा ।।
मोहित चित्त भ्रष्ट है ज्ञाना ।
पावत कबहु न अस जन त्राना ।।३२।।

दोहा–जतन सदा ज्ञानी करहि निज स्वभाव अनुसार ।
निग्रह का जनकर सकै जीव प्रकृति बस धार ।।३३।।

चौपाइ – निज विषयन मँह इन्द्रिय सारी ।
रागरु द्वेष रखैं सुन भारी ।।
यह दोनों रिपु प्रवल महाना ।
इनकर वस मँह कबहु न आना ।।३४।।

यदि पर धर्म श्रेष्ठ गुणचारी ।
पै स्वधर्म निर्गुण हितकारी ।।
भला स्वधर्म पर जानहु मरना ।
है पर-धर्म नेष्ट भय करना ।।३५।।

अर्जुन कहा सुनहु हृषि केशा ।
विन इच्छा प्रेरित आदेशा ।।
करे मनुज हठि लागि घनेरा ।
पाप आचरण केहि कर प्रेरा ।।३६।।

तब कहि पारथ से भगवाना ।
काम क्रोध दोउ शत्रु महाना ।।
यह पापी भूखे नित जानो ।
है संभूत रजो गुण मानो ।।३७।।

ढ़के धूम जिमि अनल धनेरा ।
मैल कांच अरू गर्भहि जेरा ॥
तैसे ही ढ़का काम से ज्ञाना ।
कहे सकल यह वेद पुराना ॥३८॥

अति अतृप्त है अनल समाना ।
ज्ञानिन का रिपु काम महाना ॥
यह ढ़कि देत ज्ञान को नित है ।
रति पति काम हरण करि चित है ॥३९॥

मन इन्द्रिय बुद्धि यह गढ़ है ।
इन पर वास काम कर दृढ़ है ॥
जीव विमोहित यहि कर द्वारा ।
होत ज्ञान ढकि वारवारा ॥४०॥

याते करि विश्वास प्रवीना ।
करहु प्रथम इन्द्रिय स्वाधीना ॥
हरण करै जो ज्ञान प्रकाशा ।
करहु काम पापी कर नाशा ॥४१॥

दोहा— परे देह ते इन्द्रिया, मन इन्द्रिय से जान ।
बुद्धि तो मनते परे, याते आत्म महाना ॥४२॥
यहि विधि बुद्धि ते परे, आत्म तत्त्व निरधार ।
मनवश कर दुर्जयरीपु, काम दुष्ट कह मार ॥४३॥

(श्री कृष्ण गीता का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ)



* श्री कृष्ण - गीता *

★ चौथा अध्याय ★

दोहा— अर्जुन से बोले प्रभु, आदि कल्प संयोग ।
दिनकर से मैंने कहा, यह अविनाशी योग ।।
सूर्यदेव मनु से कहा सुत अधिकारी जान ।
पुनः दिया मनुराज ने ईक्ष्वांकु को ज्ञान ।।१।।

चौपाई – यहि विधि परम्परा को पाईं ।
जानत राज ऋषिन अपनाईं ।।
किन्तु बहुत काल ते पारथ !।
योग नष्ट हो गया यथा रथ ।।२।।

योग वही शुभ परम पुरातन ।
जो उत्तम अति गोप्य सनातन ।।
तुम कँह सखा भक्त प्रिय जानी ।
यह रहस्य मैं किया बखानी ।।३।।

बोला अर्जुन केहि विधि मानूं ।
बीते काल बहुत भये भानूं ।।
जन्म आपकर अबही मुरारी ।
कहा ? योग यह संशय भारी ।।४।।

सुनिकर पुनि बोले भगवाना ।
मम तव जन्म अनेक निदाना ।।
हम जानै अरू तुम नहीं जानो ।
पारथ यह निश्चय कर मान ।।५।।

प्राकृत जीव जन्म लेई जैसे ।
मैं जनमूं कवहु नहीं वैसे ॥
अज अविनाशी ईश कहाऊँ ।
वस करि प्रकृति जन्म धरि आऊँ ॥६॥

जव जव होय धर्म कर नासा ।
बाढ़हि घोर पाप दुःख त्रासा ॥
अरू अधर्म कर हो विस्तारा ।
तव प्रकटू मैं ले अवतारा ॥७॥

करन सदा संतन कर रक्षा ।
दुर्जन प्राण हरण पत्यक्षा ॥
धरा धर्म स्थापन कर हेतू ।
मैं प्रकटू युग-युग कुल केतू ॥८॥

दोहा— जन्म कर्म मम दीव्य का, जिसको होता ज्ञान ।
देह त्याग जन्में नहीं, पावत मोहि सुजान ॥९॥

शरण हमारी जो गहे राग क्रोध भय हीन ।
वहुत ज्ञान तप से शुचि मम स्वरुप में लीन ॥१०॥

चौपाई— जस मोहि भजे समझ मन भाई ।
तस मैं ताहि भजू हरषाई ॥
यही रहस्य पंडित मन धरही ।
वे मम पंथ सदा अनुसरही ॥११॥

पूजै देव राखि फल ईच्छा ।
माँगत सदा देवसन भीच्छा ॥

कर्म सिद्धि पावहिं सब लोगा ।
कर्म करै जस भोगई भोगा ।।१२।।

चारो वर्ण सृजन मैं कीन्हा ।
सुन गुण कर्म भेद ते भीना ।।
मैं इनकर कर्त्ता अविनाशी ।
किन्तु अकर्त्ता भी सुखराशी ।।१३।।

चाह कर्म फल की मोहि नाईं ।
कर्म कदापि न मोर लिपाईं ।।
यहि प्रकार जानत जो मोई ।
कर्मपाश में बधे न सोई ।।१४।।

कर्म जो प्रथम किन्ह यहि जानी ।
परम पुनीत मुमुक्ष ज्ञानी ।।
ताते तुम पूर्वज कृत भाई ।
करउ यथार्थं कर्म सुखदाई ।।१५।।

किन्तु कर्म क्या ? कौन अकर्मा ।
कवि जन चित्त भ्रांत होई भर्मा ।।
कर्म वोही मैं कहूं बखानी ।
पाप-मुक्त होवै तेही जानी ।।१६।।

कहे कर्म किसको यह जानो ।
अरू विकर्म भी अब पहिचानो ।।
करि अकर्म का पूरण ज्ञाना ।
गहन कर्म की गति महाना ।।१७।।

जो अकर्म में देखत कर्मा ।
लखत कर्म मँह सदा अकर्मा ॥
सब मानव में वह नर ज्ञानी ।
ज्ञाता युक्त-कर्म कर ध्यानी ॥१८॥

दोहा — रहित ज्ञान संकल्प से जिनका सब उद्योग ।
दग्ध कर्म ज्ञानाग्नि से करैं सो पंडित लोग ॥१९॥

चौपाई— त्याग कर्म - फल रहहि असंगा ।
नित्य निराश्रय तृप्त अभंगा ॥
किन्तु कर्म करत भी पारथ ! ।
नहीं कछु कर्म करै चरितारथ ॥२०॥

तजकर सकल परिग्रह आशा ।
अंतः करण शुद्ध विश्वासा ॥
करै कर्म हित लागि शरीरा ।
ताहि न होई पाप रणधीरा ॥२१॥

ईर्षा रहित द्वंद नहीं रोषा ।
यथा लाभ करि रह संतोषा ॥
मानहिं सिद्धि असिद्धि समाना ।
पड़े न बन्धन कर्म सुजाना ॥२२॥

है स्थिर चित्त ज्ञान मँह लीना ।
मुक्त - जीव आसक्ति विहीना ॥
जो आचरण यज्ञ हित करहीं ।
उनकर सुनहु कर्म सब जरहीं ॥२३॥

अर्पण ब्रह्म, ब्रह्म हवि जानो ।
होता ब्रह्म अनल पहिचानो ॥
कर्म सकल ब्रह्ममय जाके ।
चेतन ब्रह्म प्राप्त हो ताके ॥२४॥

दूसर योगी कर्म अनूपा ।
करै यज्ञ सुर पुजन रुपा ॥
कोई ब्रह्माग्नि यज्ञ कै द्वारा ।
ज्ञानी यज्ञ करै विस्तारा ॥२५॥

कोइ कर्णादिक इन्द्रिय सारी ।
होमे संयम अनल मंझारी ॥
शब्दादिक विषय को कोई ।
इन्द्रियाग्नि मँह होमे गोई ॥२६॥

संयम रुप सुआत्म ध्यान ते ।
योगानल दैदिप्य ज्ञान ते ॥
इन्द्रिय सकल प्राण व्यापारा ।
हवन करै नित याहि मँझारा ॥२७॥

दोहा-जग मंगल हीत दान करि, निगम पाठ नित कर्म ।
ज्ञान, योग, तपयज्ञ कोई, साधत ज्ञानी धर्म ॥२८॥
होमत प्राण अपान मँह, प्राणहि मध्य अपान ।
रोकत प्राण अपान को, प्राणायाम सुजाना ॥२९॥

चौपाई— हवन करै नियमित आहारी ।
होमत प्राणहि प्राण मँझारी ॥
करि क्षय पाप यज्ञ कै द्वारा ।
जानहि यज्ञ-कर्म विस्तारा ॥३०॥

यज्ञ शेष अमृत करि भक्षन ।
पावैं नर वह ब्रह्म सुलक्षन ॥
यज्ञ बिना भूपर सुख नाईं ।
स्वर्ग लोक की कहाँ चलाई ॥३१॥

ब्रह्मा निज मुख से विस्तारा ।
है अस यज्ञ अनेक प्रकारा ॥
यह सब होई करम ते पारथ ।
जानत पावहि मोक्ष यथारथ ॥३२॥

द्रव्य यज्ञ ते उत्तम अतिशय ।
ज्ञान यज्ञ है सदा धनंजय ॥
सब कर्मों का अंत ज्ञान में ।
निश्चय करि तुम रखहु ध्यान में ॥३३॥

हो प्रनिपात प्रश्न करि सेवा ।
तत्वदर्शी ज्ञानी गुरुदेवा ॥
शुद्ध भाव हो निर अभिमानी ।
दैहै ज्ञान परम प्रिय जानी ॥३४॥

यहि विधि ज्ञान प्राप्त जब होई ।
पुनि नहीं मोह सतावे तोही ॥
निज मँह मोहि मँह सकल जहाना ।
तू देखेगा जीव समाना ॥३५॥

सब पापिन ते पापाचारी ।
यदि निज को तू लेई विचारी ॥
तो भी चढ़कर ज्ञान जहाजा ।
उतर पार पूरण हो काजा ॥३६॥

जिमि पावक मँह ईंधन गिरकर ।
होई जात है भस्म धनुर्धर ॥
तिमि ज्ञानानल करम अनता ।
करि देवत है भस्म तुरता ॥३७॥

नहीं कछु वस्तु जगत में आना ।
जो पवित्र हो ज्ञान समाना ॥
योग सिद्धि ते यह बहु काला ।
पावहिं निज मँह ज्ञान विशाला ॥३८॥

श्रद्धा सहित जितेन्द्रिय मत्पर ।
होई ज्ञान कर लाभ करैं नर ॥
ज्ञान लाभ कर प्रकट प्रभाऊ ।
पावै सुखद शान्ति सब ठाउ ॥३९॥

संशय युक्त जीव अज्ञानी ।
श्रद्धाहीन नष्ट हो प्रानी ॥
वह परलोक अरू लोक नसावै ।
संशयात्मा सुख नहीं पावै ॥४०॥

दोहा — कर्म योग में ज्ञान से, संशय किन्हें दूर ।
आत्मवान नरका सकल, कर्म बंध हो चूर ॥४१॥
याते वध अज्ञान को लेकर ज्ञान कुठार ।
कर्म योगी बन हो खड़ा, अर्जुन अब ललकार ॥४२॥

(चौथा अध्याय समाप्त हुआ)



॥ श्री हरिः ॥

* श्री कृष्ण - गीता *

★ पाँचवा अध्याय ★

दोहा- अर्जुन बोला प्रेम से सुनिये श्री यदुराय ।
प्रथम कहा सन्यास को श्रेष्ठ आप समझाय ॥
कर्म-योग का कर रहे फिर अब आप बखान ।
एक बात पक्की कहो जासे हो कल्याण ॥
अर्जुन भ्रम तजकर सुनो कहन लगे भगवान ।
कर्म-योग सन्यास का तुम्हें बताऊ ज्ञान ॥१॥

चौपाइ — कर्म-योग सन्यास यथारथ ।
समझ मोक्ष प्रद दोनों पारथ ॥
कर्म न्याम ते सुनहु धनञ्जय ।
कर्म योग उत्तम है अतिशय ॥२॥

इच्छा द्वेस रहित जो होई ।
द्वन्द मुक्त विचरे जग सोई ॥
कहहि ताहि पूरण सन्यासी ।
काटत भव बन्धन कर फांसी ॥३॥

"सांख्य योग" दोउ भिन्न बतावै ।
मूरख जन कछु समझ न पावै ॥
पंडित फल सम दोउ कर कहहीं ।
जो इन मँह एकहि आचरही ॥४॥

मिले सांख्य ते जो अस्थाना ।
पावहि वह योगी धर ध्याना ॥
जो तत्त्वज्ञ परम पद जाना ।
लखत सांख्य जो योग समाना ॥५॥

विना योग दुर्लभ सन्यासा ।
लाभ होय नहीं पूरण आशा ॥
ताते योग युक्त मुनि जोई ।
शीघ्र व्रह्म पद पावै सोई ॥६॥

आत्म जयी अरू इन्द्रीय जीता ।
योग युक्त मन ज्ञान पुनिता ॥
करहि कर्म सदा मन हरसी ।
हो नहीं लिप्त कबहु समदरसी ॥७॥

यह तत्त्वज्ञ योग युत जाने ।
मैं कछु कर्म करूं नहीं माने ॥
सूंघत, सुनत, लखत, अरु खावत ।
छूवत, जीवत, सोवत, जावत ॥८॥

पकड़त, छोड़त, अरू मुख वोलत ।
करत बंध पलके कभु खोलत ॥
इन्द्रीय निज विषयन मैं बरती ।
हो स्वच्छन्द कर्म सब करती ॥९॥

अर्पण कर्म व्रह्म मँह करही ।
रहित संग हो सदा विचरही ॥
उनकर पाप दूर सब भागै ।
पद्म पत्र जिमि जल नहीं लागै ॥१०॥

दोहा — काया, मन, अरू वुद्धि से इन्द्रिय कर्म महान।
संग छोड़ योगी करै आतम बोध हित जान ॥११॥
पावत शान्ति युक्तजन सकल कर्म फल त्याग।
बँधत सकामी कर्म ते कर फलते अनुराग ॥१२॥

चौपाई — इन्द्रिय जीत कर्म मन त्यागी।
सुखते विचरहि वड़भागी ॥
बसि नवद्वार नगर के माँही।
न कछु करै करावत नाही ॥१३॥

कर्त्तापन अरू कर्म सुजाना।
तिमि संयोग कर्म फल नाना ॥
रचै न प्राणिन कर भगवाना।
यह स्वभावते होत निदाना ॥१४॥

ईश्वर पुण्य पाप नहीं लेही।
केहिकर जानहु सत्य सनेही ॥
ढका हुआ माया ते ज्ञाना।
तासे मोहित सकल जहाना ॥१५॥

जिनकर आतम ज्ञान के द्वारा।
मिटा सकल अज्ञान विकारा ॥
ज्ञान हृदय उनके भगवाना।
करत प्रकाशित रवि समाना ॥१६॥

लगा रहे मन प्रभू लगन में।
तत्तपर निष्ठावान भजन में ॥
नर निष्पाप होय तद्रूपा।
अरू नहीं पड़े कबहु भवकूपा ॥१७॥

विद्यावान विनयी गुणवाना ।
विप्र धेनु गज अति बलवाना ॥
अरू चंडाल अधम कुल श्वाना ।
पंडित देखहिं सकल समाना ॥१८॥

अर्जुन सुनो ज्ञान यह गीता ।
सम दरसी मानव जग जीता ॥
उनकर स्थिति ब्रह्ममय जानो ।
सम निर्दोष ब्रह्म पहिचानो ॥१९॥

दोहा– पाइ वस्तु प्रिय हर्ष नहीं, अप्रिय पाइ न शोक ।
स्थिर मति उस ब्रह्मज्ञ को, मिले ब्रह्म का लोक ॥२०॥

चौपाई— बाहर विषय भोग तजि रहही ।
अंतर प्रबल आत्म सुख लहही ॥
ब्रह्म योग-युत मानव ध्यानी ।
पावत बहु अक्षय सुख ज्ञानी ॥२१॥

इन्द्रिय विषय बह्य संयोगा ।
कारण सकल दुःखकर भोगा ॥
आदि अंत लखि बुध जन भाई ।
रमै कभी ना इन मँह जाई ॥२२॥

प्रथमहि देह नाश के पारथ ! ।
काम क्रोध बस करै यथारथ ॥
वो नर सदा सर्व सुख लहही ।
वाको योग-युक्त कवि कहही ॥२३॥

अंतर सुख अंतर आरामा ।
अंतरवान ज्योति सुख धामा ।।
ब्रह्मरुप हो युक्त महाना ।
पावहि योगी पद निर्वाना ।।२४।।

जो निष्पापरु संशय हीना ।
आत्मदर्शी मुनि परम प्रवीना ।।
चाहत जो सब कर कल्याना ।
पावहि योगी पद निर्वाना ।।२५।।

काम, क्रोध ते यति विहीना ।
बुद्धिमान अरू मन स्वाधीना ।।
सब विधि विदित आत्मकर ज्ञाना ।
पावहि योगी पद निर्वाना ।।२६।।

तजकर वाह्य विषय को भारत ।
भृकुटी मध्य दृष्टि थिर धारत ।।
करके प्राण अपान समाना ।
नाशाभ्यन्तर चारि महाना ।।२७।।

जो मन बुद्धि इन्द्रिय जीता ।
मोक्ष परायण मुनि पुनीता ।।
भय इच्छा अरू क्रोध विहीना ।
सदा मुक्त है बंध कभीना ।।२८।।

दोहा— मख तप का है भोक्ता, सबका प्रिय जगदीश ।
यह जानत जो शान्ति सुख पावहि विश्वाधीशा ।।२९।।

(श्री कृष्ण गीता का पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ)

॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

* छठा अध्याय *

—: ध्यान योग :—

दोहा— सुनकर अर्जुन के वचन, बोले श्री भगवान ।
इच्छा फल की तज करम, करै सो योगीजान ॥
अग्निकर्म या क्रिया का, केवल त्यागन हार ।
सन्यासी योगी न वह, निश्चय लेहु विचार ॥१॥

चौपाई— जाको कह संन्यास पुकारी ।
वही योग भी है शुभकारी ॥
जो न होय संकल्प विहीना ।
वह योगी वन सकै कभी ना ॥२॥

साधन चहे योग मुनिराया ।
तिनकर कारण कर्म बताया ॥
मुनि आरूढ़ योग मँह जोई ।
तिनकर भी कारण शम होई ॥३॥

कवहु न होय विषय आसक्ता ।
रहे कर्म ते सदा विरक्ता ॥
मनकर सब संकल्प नशावै ।
मुनि वह योगारूढ़ कहावै ॥४॥

आपहि अपना करै सुधारा ।
अपना कवहु न करै विगारा ॥
आपहि अपना वैरी नर है ।
आपहि अपना वन्धूवर है ॥५॥

जो निज को अपने मँह जीता ।
वह अपनाहि मित्र पुनीता ॥
बिन जाने जो निज में बरते ।
रिपु सम रिपुता वह नर करते ॥६॥

आत्मजयी अरू शान्त महाना ।
सदा करै ईश्वर कर ध्याना ॥
सुख दुख शीत गरम इक जाना ।
मान अवरि अपमान समाना ॥७॥

जो विज्ञान ज्ञान मँह पूरण ।
हो कुटस्थ त्रिषय करि चूरण ॥
मिट्टी पत्थर स्वर्ग समाना ।
जानै जो वह युक्त महाना ॥८॥

रिपु सन बैर न हितु सन प्रिती ।
उदासीन संतन कर रीती ॥
साधु असाधुन को सम मानै ।
वाको योगी-श्रेष्ठ बखानै ॥९॥

दोहा- रहे सदा एकान्त में, एकाकी तज आस ।
संयत मन से निरन्तर, करै जो योगाभ्यास ॥१०॥

चौपाइ -- विमल भूमि आसन धरि पावन ।
नहीं ऊँचा नीचा, मन भावन ।।
कुशा विछा कुश पर मृगछाला ।
तापर वस्त्र लगाय निराला ।।११।।

बैठे तेहि आसन पर जाई ।
साधे योग - महा मुनी राई ।।
क्रिया रोक इन्द्रिय की सारी ।
कर मन को एकाग्र विचारी ।।१२।।

हो थिर काया नहीं डोलावै ।
कभी न ग्रीवा शीश हिलावै ।।
दृष्टीनाक नोंक पर राखै ।
इत उत तकै न जनि कछु भाखै ।।१३।।

ब्रह्मचर्य व्रत शान्त अखंडा ।
मन संयम करि ज्ञान प्रचंडा ।।
थिर आसन बैठा यही भाँती ।
मुझमें मन राखै दिनराती ।।१४।।

यहि विधि नियत चीत्त धरि ध्याना ।
करहि निरन्तर योग महाना ।।
मोहि महँ लगि निर्वाण स्वरुपा ।
शान्ति पावहि पद अनुरुपा ।।१५।।

सधत योगन अति भोजन ते ।
अरू ना सधै पार्थ ! भूखन ते ।।

मिलै सिद्धि ना सुन सोये ते ।
अरू ना सधै नींद खोये ते ॥१६॥

नियमित हो आहार विहारा ।
नियमित ध्यान कर्म व्यापारा ॥
सोवत जागत नियमित जबही ।
योग दुःख हर होवहि तबही ॥१७॥

नियमित मन की हो थिरताई ।
अचल आत्मा में जा भाई ॥
इच्छा रहित काम ना होई ।
योगी युक्त कहावत सोई ॥१८॥

वायु रहित जगह जिमी होती ।
अविचल सदा दीप की ज्योति ॥
तिमि सयत मन की गति जानो ।
रहत आत्म चिन्तन मँह मानो ॥१९॥

यहि विधि रोधित चित धनंजय ।
हो उपशान्त आत्म मँह निश्चय ॥
तँह लखि आत्म, आत्म मँह जाकर ।
हो संतुष्ट परम सुख पाकर ॥२०॥

छन्द-इन्द्रिय अगोचर प्राप्यमति अति तत्त्व से अनुभूत हो ।
अत्यत पा आनन्द नहि विचलित कभी अवधूत हो ॥२१॥
जेहि लाभकर पुनि लाभ कछु अरू जगत में माने नहीं ।
स्थित होय जिसमें हो न विचलित घोर दुख से भी कही ।२२।

दोहा— साधन करने योग्य है, सकल दुखो से हीन ।
जान योग दृढ़ चित्त से, निश्चय हो लवलीन ।।२३।।

चौपाई— संकल्पन ते होवन हारी ।
छोड़ वासना मन कर सारी ।।
सकल इन्द्रियों को करि जोरा ।
मनते रोक रखे चहुं ओरा ।।२४।।

सनै - सनै पुनि हों उपरामा ।
धरि धीरज मति शुद्ध ललामा ।।
तासे मन प्रभु मध्य लगावै ।
अरू कछु चिन्तन मन ना लावै ।।२५।।

यह चंचल मन अति अस्थिरा ।
जँह-जँह जाय विषय मँह वीरा ! ।।
तँह- तँह रोकि करहु वस भाई ।
अरू ईश्वर मँह देहु लगाई ।।२६।।

रजो रहित शान्त मन पूता ।
ब्रह्म - भूत निर्मल अवधूता ।।
पावहि उत्तम सुख बड़भागी ।
सकल कामना मनकर त्यागी ।।२७।।

यहि विधि करत निरंतर ध्याना ।
योगी हो निष्पाप महाना ।।
काटि सकल विषयन कर फंदा ।
पावहि परम ब्रह्म - आनंदा ।।२८।।

मैं सबमें मुझमें सब प्राणी।
अवलोकहि समदरसी ज्ञानी ॥
जो देखई सर्वत्र समाना।
व्यापक, नर योगस्थ निदाना ॥२९॥

सबमँह देखत मोहि समाया।
अरू मुझ मँह सव जीव निकाया ॥
वे सन्मुख है जीव हमारे।
मैं नहीं उनते दूर पियारे ॥३०॥

जो एकत्व बुद्धि मनलानी।
व्यापक सकल जीव मँह जानी ॥
भजै सर्वथा कर्म करता।
वह मुझमें ही सदा रमता ॥३१॥

पर का दुःख सुख जो पहिचाने।
उनकों निज दुःख सुख सम जाने ॥
वह योगिन मँह श्रेष्ठ धनंजय ?।
मानो वचन छाड़ि सब सशय ॥३२॥

दोहा— पार्थ कहा मति साम्य से जो वतलाया योग।
चंचल मन के कारणे साध सकै ना लोग ॥३३॥

चौपाई— मन चंचल है वड़ा हठीला।
प्रमथन शिल स्वभाव रंगीला ॥
दुष्कर है यह पवन समाना।
केहि विधि बस करिहो भगवाना ॥३४॥

सुनि बोले पुनि वचन मुरारी ।
चंचल मनकर निग्रह भारी ।।
कठिन अवसि पर बस हौजाई ।
यह अभ्यास त्याग ते भाई ।।३५।।

चंचल मन ते योग न होई ।
मेरे मत ते दुर्लभ सोई ।।
कर वस मनको करै उपाई ।
जासे मिले योग सुखदाई ।।३६।।

अर्जुन बोला सुनहु कृपालू ।
शिथिल जतन पर हो श्रद्धालू ।।
विचलित योग, सिद्धि नहीं आवै ।
कहहु विचार कवन गति पावै ।।३७।।

आश्रय रहित मोह आधीना ।
उभय भ्रष्ट ब्रह्म पथ हीना ।।
छिन्न भिन्न वह मेघ समाना ।
होय कि नष्ट कहहु भगवाना ?।।३८।।

अस संशय मन उपजा भारी ।
दूर करहु हे कृष्ण मुरारी ।।
तुमहि छाड़ि कर दूसर येहा ।
मेट सकै को मम संदेहा ।।३९।।

यह सुनि बोले श्री यदुराई ।
उभय लोक नहीं जाय नसाई ।।
जो कल्याण कर्म नित करही ।
दुर्गति तात ! कवहु नही परही ।।४०।।

पुण्य लोक पावन नर पाकर ।
बहुत काल तँह सुखद बिताकर ॥
जन्महि योग भ्रष्ट पुनि आई ।
उत्तम श्रीमानन् घर भाई ॥४१॥

अथवा योगिन कै परिवारा ।
जन्म लेत वह दिव्य कुमारा ॥
दुर्लभ अस जग जनम कहावै ।
निस्सदेह पारथ ! कोउ पावै ॥४२॥

जन्म लेई हरि भक्ति दृढ़ाई ।
करत जतन मन निश्चय लाई ॥
पूर्व जन्म कर पाई मति को ।
उत्तम साधन करै गती को ॥४३॥

पूर्व योग कृत जो अभ्यासू ।
हो लाचार करै नित तासू ॥
झुके योग मँह सुन वह प्यारा ।
जावहि शब्द ब्रह्म के पारा ॥४४॥

छन्द-करि जत्तन योगाभ्यास ते वहु जनम के पश्चात है ।
निष्पाप हो योगी गति उत्तम लहै सुन तात है ॥४५॥
तापस जनों से कर्म निष्ठो से विवेकिन से धनो ।
उत्तम है योगी मानकर हे वीर ! तुम योगी बनो ॥४६॥

दोहा— भजै जो मुझको ध्यान धर, श्रद्धा सहित सुजान ।
सकल योगियों में उसे, समझू सदा महान ॥४७॥

(श्री कृष्ण गीता का छठा अध्याय समाप्त हुआ)

॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

सातवाँ अध्याय

—: ज्ञान विज्ञान योग :—

सोरठा– पुनि बोले भगवान , मन आश्रित हो योग युत ।
संशय रहित सुजान, जैसे जानेगा मुझे ॥१॥
कहता तुमको ज्ञान, पूर्ण रीति विज्ञान सह ।
शेष रहे ना आन, जिसे जानकर लोक मह ॥२॥

चौपाई— कोई सहस्त्र पुरुषन में भाई ।
जतन करत सिद्धि हित जाई ॥
उन सिद्धन में भी कोई-कोई ।
जानत मोहि यथारथ गोई ॥३॥

नभ, पावक, वायु, नभ धरणी ।
अहंकार मन बुद्धि वरणी ॥
भिन्न यही है आठ प्रकारा ।
प्रकृति समझ मन करहु विचारा ॥४॥

अपरा प्रकृति यहि है पारथ ।
याते परा है भिन्न यथारथ ॥
पराजीव रूपी सुन प्यारा ।
धारण करै जो सब संसारा ॥५॥

परा और अपरा से भाई।
हो वहि सृजन समुदाई॥
सकल विश्व का में हूं कारण।
पैदा करूं करूं पुनि मारण॥६॥

मुझ सिवाय दूसर कछु नाहीं।
किंचित मात्र वस्तु जग माही॥
गुथा सूत्र मँह मणि-गण जैसे।
मुझमें गुथा विश्व है तैसे॥७॥

जल में रस शशि सूर्य प्रकाशा।
अरू ओंकार वेद मँह भासा॥
में हूं शब्द गगन में पारथ।
दृढ़ मानव में हूं पुरुषारथ॥८॥

हूं धरणी मँह गंध अनूपा।
अरू पावक मँह तेज स्वरुपा॥
जीवो में हुं जीवन प्यारा।
तारस जन में तप निरधारा॥६॥

सकल भूत गण का मोहि मानो।
बीज सनातन हुं मैं जानो॥
हुं विवेक बुद्धिमान में।
अरू हूं तेज तपस्वी जन में॥१०॥

दोहा— बल हूं मैं बलवान का, काम राग से हीन।
मैं जीवो में काम हूं सकल धर्म आसीन॥११॥

चौपाई— सत, रज, तम, यह भाव प्रधाना ।
है मुझसे उत्पन्न निदाना ॥
यह सब मुझमें रहे समाई ।
पर उन मँह रहता मैं नाई ॥१२॥

यहि विधि त्रिविध भाव से प्यारा! ।
मोहित होकर यह जग सारा ॥
जानत नहीं मम अव्यय रुपा ।
जो है त्रिगुणा तितअनूपा ॥१३॥

त्रिगुणमयी दैवी यह माया ।
अगम अपार भेद नही पाया ॥
जो मेरी शरणागत आवै ।
वह जन सहज पार ह्वै जावै ॥१४॥

मोहि नही भजै नराधम भारी ।
पाखण्डी अरू भ्रष्टाचारी ॥
माया अपहृत जिनकर ज्ञाना ।
धरतं आसुरी भाप महाना ॥१५॥

सुन हे भरत वंश उजियारा ।
भक्त भजे मोहि चार प्रकारा ॥
आरत, जिज्ञासु, अरू ज्ञानी ।
चौथा भगत अर्थं प्रिय प्राणी ॥१६॥

पर उन मँह है उत्तम ज्ञानी ।
जो एकाग्र चित मम ध्यानी ॥
मेरा प्रेम अटल हिय धारे ।
मैं उनको प्रिय वे मोहि प्यारे ॥१७॥

यद्यपि चारो परम उदारा ।
करत रात-दिन ब्रह्म विचारा ।।
पर ज्ञानी स्वरुप है मेरा ।
स्थिर बुद्धि उत्तम गति प्रेरा ।।१८।।

मोहि अनेक जन्मो के अंता ।
पावहि ज्ञानी भजन करता ।।
बासुदेव मय सब जग जाने ।
अस महात्मा दुर्लभ पाने ।।१९।।

होय कामना के वस भाई ।
पुजै इत्तर देवता जाई ।।
उनके सब विधान को धारे ।
निज स्वभाव प्रेरित जन सारे ।।२०।।

दोहा— जो जेही पुजै देव को, श्रद्धा सहित यथार्थ ।
उनकी श्रद्धा उसी में कर देता हूं पार्थ ।।२१।।

यहि विधि श्रद्धा सहित जो पुजे देव पुनीत ।
उनसे पावे इष्ट-फल मेरा दिया सप्रीत ।।२२।।

चौपाई— किन्तु मन्द मति जानहु वे नर ।
पावै फल अन्तवत्त नश्वर ।।
देव भक्त देवन कों पावै ।
अरू मम भक्त मोर ढीग आवै ।।२३।।

मम स्वरुप उत्तम अरू अव्यय ।
जानत नहीं मूर्ख जन अतिशाय ।।
हूं अव्यंक्त कहूं समझाई ।
पर देते मोहि ब्यक्त बताई ।।२४।।

मैं हूं छिपा योग माया से ।
लखि नहीं परौ प्रकट काया से ।।
हूं मैं पारथ ! अतिशय गूढ़ा ।
अज अव्यय जानत नहीं मूढ़ा ।।२५।।

हुए अवरी जो ह्वै हे आगे ।
वर्त्तमान मँह है अनुरागे ।।
मैं जानूं सवही को ज्ञानी ।
पर जाने ना मुझको प्रानी ।।२६।।

सुनहु परंतप ! इच्छा द्वेषा ।
द्वन्दरु सुख-दुख मोह कलेशा ।।
इनते रहे सृष्टि कर जीवा ।
सकल सदा मोहित बल सीवा ।।२७।।

जो अति पुन्यवान गुण धारे ।
नष्ट पाप हैं जिनकर सारे ।।
नही जँह द्वन्द मोह लवलेशा ।
अस दृढ़-ब्रत मोहि भजै हमेशा ।।२८।।

दन्द-छुटन जरा अरू मरण से, लेते शरण मेरी यती ।
आध्यात्म की अरू ब्रह्म की वह जानता पूरण गती ।।२९।।
अधियज्ञ अरू अधिभूत वो अधिदेव मुझको जानते ।
मरणान्त में भी वे मुझे निश्चय रहैं पहचानते ।।३०।।

(श्री गीता कृष्ण का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ)



॥ श्री हरिः ॥

* श्री कृष्ण - गीता *

★ आठवाँ अध्याय ★

—: अक्षर ब्रह्म योग :—

दोहा—पारथ सुनि पूछन लगा कहिये श्री घनश्याम ।
कौन ब्रह्म ? अध्यात्म क्या ? क्या है कर्म ? ललाम ॥
अधिभूत कहते किसे ? क्या है यह अधिदैव ।
अधीयज्ञ क्या है प्रभो ? समझा कहो तथैव ॥१॥

मधुसूदन ! इस देह में इनकी क्या ? पहचान ।
अंत समय ले आपको योगी कैसे जान ? ॥२॥

चौपाई—अर्जुन वचन सुनत प्रभू सत्वर ।
बोले ब्रह्म परम है अक्षर ॥
अस स्वभाव अध्यात्म पुकारा ।
कर्म सृजन सृष्टि व्यापारा ॥३॥

क्षर जो है भूत कहाता ।
है अधिदेव जो पुरुष लखाता ॥
सकल देह धारीन में मेरा ।
अधो यज्ञ है रुप धनेरा ॥४॥

अंत समय मेरा धरि ध्याना ।
जो नर त्यागहि देह निदाना ॥

मम स्वरुप पावहि करि नेहा ।
यामें नहीं कछु है संदेहा ॥५॥

आव ध्यान करिके जेहि जेहि ।
अंतकाल छाड़ै नर देही ॥
वही भाव वो पावै जाई ।
कुंती पुत्र! सुनहु मन लाई ॥६॥

सदा काल यह मन में बूझो ।
मुझको सुमिर पार्थ! रण झूझो ॥
मम बुद्धि अर्पण कर मुझको ।
पावो मोहि सत्य कहु तुझको ॥७॥

जो अभ्यास योग संयुक्ता ।
चित अन्य नहीं हो अनुरक्ता ॥
परम पुरुष कर ध्यान लगावै ।
निश्चय वो परमेश्वर पावै ॥८॥

छन्द-सर्वज्ञ अति प्राचीन शासक शुक्ष्म सर्वाधार है ।
धाता सकल चिन्तन रहित आदित्य सा तम पार है ॥९॥
देहान्त में दृढ़ चित्त से अरू भक्ति संयुत योग से ।
भ्रू मध्य प्राण लगा मिले उस पुरुष दिव्य सुजोग से ॥१०॥
वेदज्ञ जेहि अक्षर कहे तज राग यति रमते तहाँ ।
संक्षेप में वह पद कहूं जेहि हेतु करते ब्रत महा ॥११॥
नव द्वार संयम करि हृदय में रोक मन मारण करे ।
पुनि प्राण मस्तक मध्य लेकर योग को धारण करे ॥१२॥

चौपाई— ब्रह्म एक अक्षर ओंकारा ।
जपत निरंतर उतरहि पारा ॥
देह त्याग बेला में ध्यावें ।
योगी दिव्य परम गति पावैं ॥१३॥

जो अनन्य हिय से धरि ध्याना ।
सुमिरण मेरा करे सुजाना ॥
नित्य - युक्त योगी को पारथ ।
सदा सुलभ मैं रहूं यथारथ ॥१४॥

योगी जन जब मुझको पावैं ।
पावन परम सिद्ध हो जावैं ॥
नश्वर देह महा दुःखदाई ।
पुर्नजन्म नहि हो मोहि पाई ॥१५॥

ब्रह्मलोक आदिक जो सारे ।
आवागमन युक्त है प्यारे ॥
पुर्नजन्म नहि हो मोहि पाई ।
कौन्तेय ! तोहि दिया बताई ॥१६॥

युग हजार का शास्त्र प्रमाना ।
एक दिवस ब्रह्मा का माना ॥
युग हजार की रात कहावैं ।
अहोरात्र विद यहि बतावैं ॥१७॥

जब - जब दिवस ब्रह्म करु होई ।
माया ते प्रगटे सब कोई ॥
पुनि जब निशा ब्रह्म की आवे ।
तो सब ब्रह्म मध्य मिल जावे ॥१८॥

प्रकृति विवस सकल जग जीवा ।
बार - बार जन्महि बल सीवा ॥
जो उत्पन्न ब्रह्म दिन माई ।
होत रात सब लय ह्वै जाई ॥१९॥

इनसे परे एक अविनाशी ।
है अव्यक्त सदा सुखराशी ॥
नाश भये सब जीव तथापी ।
नहीं होता वह नष्ट कदापी ॥२०॥

दोहा– जो अक्षर अव्यक्त तोंही, कहा परम गति जान ।
जिसे पाय लोटे नहीं वह मेरा अस्थान ॥२१॥

चौपाई— सकल भूत में जो है छाया ।
जिसमें सारा विश्व समाया ॥
सोई अनन्य भक्ति के द्वारा ।
प्राप्त होय परमेश्वर प्यारा ॥२२॥

जेहि महँ योगी त्याग शरीरा ।
पुर्नजन्म नहिं पावै वीरा ॥
अथवा जाहि पाहि फिर आवै ।
वही काल हम तुमहि बतावै ॥२३॥

शुक्ल पक्ष दिन पावक ज्योति ।
रवि गति जब उत्तर महँ होती ॥
यहि छः मास त्याग तनु जावै ।
योगी सत्य ब्रह्म पद पावै ॥२४॥

कृष्ण पक्ष अरू धूम निशा हो।
जब दिनकर भी याम्य दिशा हो।।
चन्द्र ज्योति मँह योगी जावैं।
पुनि लै जन्म महि पर आवैं।।२५।।

शुक्ल कृष्ण दो गति सनातन।
यहि जग की मानैं ज्ञानी जन।।
जाई एक ते पुनि नही आवैं।
अवरि जन्म दूसर ते पावैं।।२६।।

छन्द—पड़ता नहीं है मोह में दोउ
जानकर योगी गती।।
याते सकल ही काल में
हो योग-युक्त बनो जती।।२७।।

वेद में मख दान तप से पुण्य फल जोहै कहे।
सब त्याग योगी परमपद,
यही ज्ञान के बल से लहे।।२८।।

(श्री कृष्ण गीता का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ)



॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

* नवाँ अध्याय *

—: राज विद्या योग :—

सोरठा— वोले श्री भगवान दोषहीन लखि ज्ञान सह ।
कहूं गुप्त विज्ञान जानि अशुभ से मुक्त हो ॥१॥

चौपाई— सकल गुप्त विद्या महँ राजा ।
पावन परम ज्ञान सिरताजा ॥
सुगम धर्मयुत अव्यय ताता ।
जो प्रत्यक्ष सुखद फल दाता ॥२॥

श्रद्धा सत्य धरम से हीना ।
अस जन पावै मोहि कभी ना ॥
भ्रमें सदा मृत्यु भव पथ में ।
जन्म मरण के बैठा रथ में ॥३॥

मुझ अव्यक्त ईश से प्यारा ।
परि पूरण है सब संसारा ॥
मुझ में समझ सकल है प्राणी ।
मैं हूं उनसे परे सुज्ञाणी ? ॥४॥

मुझमें व्यापक भूत नहीं भी ।
लख मम योग प्रभाव सही भी ॥

धारण-पोषण करने हारा।
मैं हूं पर नहीं मोह हमारा ॥५॥

ज्यों सर्वत्र पवन संचारी।
रहे सदा आकाश मझारी ॥
तैसे सकल भूत यह जानो।
मुझमें व्यापक है पहिचानो ॥६॥

प्रलय काल मँह जीव सदा ही।
होत लीन मम प्रकृति मांही ॥
पुनि प्रारंभ सृष्टि के काला।
सरजन करौ मैं जीव विशाला ॥७॥

कर स्वाधिन प्रकृति मैं प्यारा।
रचता हूं जग वारंबारा ॥
माया विवस सकल संसारा।
जीव चराचर है लाचारा ॥८॥

अनासक्त अरू सदा उदासी।
रमण करौ इन मँह सुखराशी ॥
ताते कबहु न बांधत मोही।
यह सब कर्म कहौ मैं तोही ॥९॥

पाकर सुन अधिकार हमारा।
रचै प्रकृति जग वारंबारा ॥
कारण यही चक्र की नाईं।
भ्रमत चराचर है जगमाईं ॥१०॥

दोहा– विश्वपती समझे नहीं, परम भाव मोहि गूढ़।
मुझको मानव समझकर, करे अवज्ञा मूढ़ ॥११॥
वृथा कर्म आशा वृथा, सदा ज्ञान से हीन।
महा मोहिनी आसुरी, प्रकृति में लवलीन ॥१२॥

चौपाई— आश्रित हो दैवी प्रकृति के।
भूतादि अव्यय मोहिनी के ॥
जानि भजन योगी जन करते।
वे अनन्य मन मुझमें धरते ॥१३॥

करै कीर्तन हरि यश गावे।
मानस पकज में नित ध्यावे ॥
और वन्दना निश दिन मेरी।
दृढ़-व्रत भक्ति करे हिय हेरी ॥१४॥

कोई एक ज्ञान - यज्ञ सुखमूला।
लखि विराट करते अनुकूला ॥
कछु जन भेद अभेद निहारी।
वहुधा भक्ति करै हमारी ॥१५॥

स्मार्त श्रोत मख मैं हूं भाई।
औषध स्वधा सार सुखदाई ॥
मंत्र अनल अरू घृत आहुती।
मैं हूं पार्थ समझ मन कूंती ॥१६॥

सकल विश्व का मैं हूं धाता।
समझ पितामह पितु अरू माता ॥
जान मोहि पावन ओंकारा।
ऋक, यजु, साम पुण्य श्रुति सारा ॥१७॥

गति पालक, प्रभु शरण निवासू ।
वन्धु साक्षी अमित प्रकाशू ।।
अरू निधान सृजन लयकारी ।
स्थित हूं अव्यय वीज सुखारी ।।१८।।

रोकूं जल वरसु घनघोरा ।
करौं ताप दारुण चहुं ओरा ।।
अमृत अवरि मृत्यु कर रुपा ।
हूं में ही सत - असत स्वरुपा ।।१९।।

जो त्रै विद्या सोम करि पाना ।
मख करि चहत स्वर्ग मँह जाना ।।
पुण्य साध सुरलोक सिधावैं ।
दिव्य भोग देवन का पावैं ।।२०।।

हो गत पुण्य स्वर्ग से भाई ।
मृत्यु लोक जन्मैं पुनि आई ।।
फल आसक्त वेद विधि करही ।
आवागमन फंद मँह परही ।।२१।।

जो अनन्य निष्ठा से प्रेरा ।
निशि दिन चिन्तन करे वो मेरा ।।
नित्य प्रेम युत अस भगतन का ।
योग क्षेम करूं मैं उनका ।।२२।।

दोहा— अन्य देव श्रद्धा सहित, पूजत नर हो लीन ।
वो भी पूजन है मेरी, किन्तु है विधि हीन ।।२३।।
सकल यज्ञ का गोगात्मा, अरू स्वामि बलवान ।
न जानै मोहिं तत्व से, वे गिरते अज्ञान ।।२४।।

चौपाई— सुर पूजक देवन पह जावै ।
पितर भक्त पितरन को पावै ।।
भूतहि मिले भूत भजि जोहि ।
अरू मम सेवक पावै मोहि ।।२५।।

पत्र, पुष्प, फल जल शुचि मेरे ।
अर्पण करै भक्ति से प्रेरे ।।
निर्मल चित्त भगतन की भाई ।
भक्षण भेट करूं हरषाई ।।२६।।

करो कर्म जो मन पाना ।
वंदन यजन हवन तप दाना ।।
शुभ व्रतादि अरू संध्या तर्पण ।
अर्जुन ! करो सकल मन अर्पण ।।२७।।

यो शुभ अशुभ कर्म के बंधन ।
काट मुक्त होगा कुरुनंदन ।।
योग - युक्त संन्यासी होई ।
तो पुनि प्राप्त करेगा मोई ।।२८।।

शत्रु - मित्र नहीं कोई मम है ।
भाव सर्व भूतों में सम है ।।
जो मोहि भजै भगति उपजाई ।
मैं उनमें वह मुझ मँह भाई ।।२९।।

यदि मानव हो दुष्ट घनेरा ।
पर दृढ़ भजन करै जो मेरा ।।
निश्चयवान ठीक पहिचानो ।
साधु जन तुम उन कँह जानो ।।३०।।

वह अति शीघ्र धर्म - युत होई ।
अटल शान्ति हिय पावहि सोई ॥
कहता सत्य धनञ्जय प्यारा ।
भक्त नष्ट नहीं होय हमारा ॥३१॥

योनि अधम पाप तनुधारी ।
वणिक, शुद्र। अथवा हो नारी ॥
मेरे शरण आयकर भाई ।
पावै गति परम सुखदाई ॥३२॥

दोहा–फिर क्या ब्रह्मण भक्त की, राज ऋषि की बात ।
याते नश्वर लोक में, भजन करहु मम तात ॥३३॥

मन से मेरा भक्त हो, पूजन करहु प्रणाम ।
शरणागत हो अतिमगन, पावो मोहि ललाम ॥३४॥

(श्री कृष्ण गीता का नवाँ अध्याय समाप्त हुआ)



॥ श्री हरिः ॥

❋ श्री कृष्ण - गीता ❋

★ दशवाँ अध्याय ★

—: विभूति योग :—

दोहा— पुनि बोले यदुवंशमणि, परम वचन धर ध्यान।
सुन पारथ हितकी कहूं, अति प्रिय तुमको जान ॥१॥
जन्म मेरा जाने नहिं, देव महर्षि तात।
उन सबहि का आदि मैं, कारण हुं विख्यात ॥२॥
जाने जो मोहि तत्व से, अज अनादि लोकेश।
उस ज्ञानी की देह में पाप रहे ना लेश ॥३॥
चतुराई शम सत्य दम बुद्धि क्षमा विचार।
निन्दा कीर्ति सुख असुख तथा सृजन संहार ॥४॥
दान अहिंसा जस अजस समता तुष्टी चाव।
भिन्न-भिन्न मुझसे हुए सब जीवो के भाव ॥५॥

चौपाई— सप्त ऋषि मनु चार वतावा।
जो प्रकटे मानस मम भावा॥
इनसे भई प्रजा जग सारी।
यही सृष्टि - क्रम सुनो विचारी ॥६॥

जो यह योग विभूति मेरी।
परम तत्व से जाने हेरी॥

अविचल योग मिले सुन ताही ।
या में तो कछु संशय नाही ॥७॥

जन्म सकल जग का मैं दाता ।
है प्रबृत मुझसे सब भ्राता ॥
श्रद्धा - भाव सहित यहि भांती ।
भजे जानि मोही दिन - राती ॥८॥

मुझमें लगा चित्त अरू प्राणा ।
करत परस्पर बोध निदाना ॥
हो संतुष्ट कथा नित कहही ।
रमत मध्य मम अति सुख लहही ॥९॥

यहि विधि भजे निरन्तर मोहि ।
ध्यान लगाई प्रीति सन जोही ॥
उनकँह बुद्धि - योग मैं देता ।
प्राप्त मोहि जासे कर लेता ॥१०॥

उनकर विपुल अनुग्रह हेतू ।
बैठी हृदय पाँडव कुल केतू ॥
ज्ञान दीप मैं करू प्रकाशा ।
तासे हो अज्ञान विनासा ॥११॥

अर्जुन कहा सुनहु भगवाना ।
परम ब्रह्म हो आप निदाना ॥
परम धाम हो शुद्ध सनातन ।
आदि - देव अज पुरूष पुरातन ॥१२॥

यहि विधि तुमहि कहहि भगवंता ।
देव ऋषि नारद श्रुति संता ॥
असित व्यास देवल अस गावा ।
पुनि श्रीमुख से आप बतावा ॥१३॥

जो कछु कहा मोहि भगवाना ।
मानत हूं मैं सत्य निदाना ॥
हैं तव कृष्ण ! अचिन्त्य अनूपा ।
देव दनुज जानत नहीं रूपा ॥१४॥

दोहा– देव ! देव ! जग के पति, पुरुषोत्तम अखिलेश ।
आप स्वयं ही जानते अपने को भूतेश ॥१५॥
दिव्य विभूति आपकी श्रीमुख से विस्तार ।
व्यापक जिनसे हो रहा यह ब्रह्माण्ड अपार ॥१६॥
ध्यान धरि केहि भांति मैं, जानू हे भगवान ।
कौन-कौन वे भाव हैं चिन्तन योग महान ॥१७॥
कहो विभूति योग सब विस्तृत से सुख दैन ।
मन नहीं होता तृप्त है, सुन-सुन अमृत वैन ॥१८॥

चौपाई— तब प्रभू बोले तत्व बखानी ।
पारथ ! सुनो मधुर मम वाणी ॥
कहूं विभूति दिव्य महाना ।
जिनका अन्त नहीं बलवाना ॥१९॥

मुझे आतमा सबका मानो ।
सबके हृदय बास मम जानो ॥

गुडाकेश ! मैं सकल नियंता ।
आदि मध्य जीवों का अंता ॥२०॥

आदित्यों में विष्णु प्रधाना ।
अरू ज्योति में सूर्य महाना ॥
मैं मरूतों में मरिचि विशेषा ।
अरू नक्षत्र बीच राकेशा ॥२१॥

साम वेद वेदों में धारो ।
देव गणों में इन्द्र विचारो ॥
इन्द्रियन महँ चंचल मैं मन हूं ।
सब जीवन में अति चेतन हूं ॥२२॥

रूद्रगणों में दिव्य महेशा ।
रक्ष-यक्ष में विदित धनेशा ॥
हूं सुमेर पर्वत में पारथ ।
वसुओं में हूं अनल यथारथ ॥२३॥

पुरोहितो में मुख्य कहाऊँ ।
वाचस्पति तुझे बतलाऊँ ॥
सेनानीन महँ स्कंध गुणागर ।
हूं मैं जलाशयों में सागर ॥२४॥

ऋषियों में हुं भृगु उदारा ।
वचन मध्य अक्षर ओंकारा ॥
स्थावर में गिरीराज हिमालय ।
यज्ञों में जप यज्ञ सुधालय ॥२५॥

वृक्ष वर्ग में पीपल जानो ।
देव ऋषिन मँह नारद मानो ।।
चित्ररथी गंधर्व गणों में ।
कपिल मुनि हूं सिद्ध जनों में ।।२६।।

उच्चैश्रवा समझै अश्वन में ।
जो प्रकटा सागर मंथन में ।।
कुंजर में ऐरावत साजा ।
हूं मनुजो में शासक राजा ।।२७।।

कामधेनु गौ मध्य विशाला ।
शस्त्रों में हुं वज्र कराला ।।
सर्पो में वासुकी भुजगा ।
प्रजा सृजन कर हेतु अनंगा ।।२८।।

दोहा— जल जीवो में वरुण हुं, नाग गणो में शेष ।
पितृ गणों में अर्यमा, शासक में नरकेश ।।२९।।
दानव में प्रह्लाद हूं, संख्या सूचक काल ।
और खगों में गरुड़ हूं, मृग में सिंह कराल ।।३०।।

चौपाई— अरू पवित्र में पूत समीरा ।
शस्त्रधारियों में रघुवीरा ।।
मैं मीनों में मगरमच्छ हूं ।
गंगा सरिता मध्य स्वच्छ हूं ।।३१।।

आदि अंत अरू मध्य बखानो ।
सकल सर्ग ही का मोहि जानो ।।

हूं अध्यात्म ज्ञान विद्या में।
वादि - बृन्द में वाद तथा में ॥३२॥

हूं समास में द्वंद समासा।
अक्षर मध्य अकार प्रकाशा ॥
अक्षय काल विश्व विख्याता।
और सर्वतोमुखी विधाता ॥३३॥

मृत्यु विकट सर्व संहारी।
हूं भविष्य का उद्भवकारी ॥
नारी में श्रीक्षम धृति वानी।
कीरति मेधा स्मृति वखानी ॥३४॥

वृहत्साम हूं साम अनंदा।
छंदो में गायत्री छंदा ॥
मार्गशीर्ष महिनों में पावन।
रितुओ में ऋतु-राज सुहावन ॥३५॥

तेजवानों में तेज महाना।
हूं छलियों में द्यूत प्रधाना ॥
जय हूं अरू मैं निश्चय रूपा।
सत्यशील में सत्व अनूपा ॥३६॥

वासुदेव हूं यादव गण में।
अरू अर्जुन हूं पाण्डव जन में ॥
व्यास-देव मुनिगण में जानो।
कवियों में मोहि शुक्र वखानो ॥३७॥

दण्डधारी महँ दण्ड महाना ।
हूं विजयी की नीति प्रधाना ॥
गुह्यो में हूं मौन सुजाना ।
ज्ञानी जन महँ ज्ञान महाना ॥३८॥

दोहा— वीज सकल जग जीव का, मैं हूं इस प्रकार ।
मेरे बीन कोई नहीं, जड़ चेतन संसार ॥३९॥

मेरी दिव्य विभूति का, अर्जुन ! है नहीं पार ।
कुछ दिग्दर्शन मात्र यह, तुमको कहा विचार ॥४०॥

जो शक्ति ऐश्वर्य अरू वैभव से संपन्न ।
जान तेज मम अंश से वस्तु वे उत्पन्न ॥४१॥

क्या ? करना विस्तार से, वहुत वड़ा है काण्ड ।
समझसार एक अंश से, हूं व्यापक ब्रह्माण्ड ॥४२॥

(श्री कृष्ण गीता का दसवां अध्याय समाप्त हुआ)



॥ श्री हरिः ॥

❋ श्री कृष्ण - गीता ❋

★ ग्यारहवाँ अध्याय ★

—: विश्वरूप दर्शन योग :—

दोहा— अर्जुन पुनि कर जोड़कर, कही गिरा धर धीर ।
दीनबन्धु आरत हरण, धन्य-धन्य यदुवीर ॥
गुप्त ज्ञान अध्यात्म का, करके कृपा दयाल ।
कहा मोह सब हट गया, सुनकर वचन कृपाल ॥१॥

सुना सभी विस्तार से सृष्टि अरू सहार ।
कमल नयन मुख आपके अव्यय जमित अपार ॥२॥

जैसा वर्णन है किया निज स्वरूप का ईस ।
इच्छा है ऐश्वर्य के दर्शन की जगदीश ॥३॥

चौपाई — समझो आप मुझे यहि लायक ।
देख सकूं सुन्दर सुर नायक ॥
तो प्रभु ! मोहि दिखावहु रुपा ।
अव्यय निज अति दिव्य अनूपा ॥४॥

विहँसी वचन बोले भगवाना ।
अर्जुन रुप लखो मम नाना ॥
है अनेक आकार प्रकारा ।
दिव्य वर्ण सैकड़ो हजारा ॥५॥

रुद्र वसु अश्विनी कुमारा ।
मरूत और आदित्य उदारा ॥
वे आश्चर्यं देख देल़ ले सारे ।
जो पहले नहीं देखा प्यारे ॥६॥

लख् एकत्र चराचर येहा ।
सकल जगत पारथ मम देहा ॥
अवरि देखना जो कछु चावहु ।
सो यामे प्रत्यक्ष दिखावहु ॥७॥

चर्म चक्षु मोहि देख सकै ना ।
याते दिव्य देहु तोहि नैना ॥
नयन अलोकिक पाकर मेरा ।
देख योगा ऐश्वर्यं धनेरा ॥८॥

संजय कहा सुनहु हे राजन !।
योगेश्वर हरि सुखकर भाजन ॥
यो कहि अर्जुन परकरि दाया ।
ईश्वरीय निज रुप दिखाया ॥९॥

है अनेक मुख नयन अनेका ।
अद्भूत दृश्य एकते एका ॥
भूषण दिव्य अनूप अपारा ।
कर गहे शस्त्र अनेक प्रकारा ॥१०॥

पहने वसन दिव्य गल माला ।
लेपन गध स्वरुप विशाला ॥

अचरज भय अनंत आकारा ।
अवरि चहुं दिशि मुख विस्तारा ॥११॥

रवि सहस्त्र मिली एक ही नारा ।
होई उदय नभ करै उजारा ॥
किन्तु प्रभा ताहि सम नांही ।
दिव्य रुप की यह जग मांही ॥१२॥

दोहा— नाना भांति विभक्त जग, एक ठौर तेहि काल ।
देव - देव के देह में अर्जुन लखा भुवाल ॥१३॥

देखरुप विस्मय हुआ रोम हर्ष गात ।
शीश झुका अर्जुन कही, हाथ जोड़ यह बात ॥१४॥

छन्द—हे देव ! देखूं आपके तनमें सकल सुर - वृन्द को ।
अरू देखता हु भूत संघ विशेष करतव छंद को ॥
मैं विरंची देखता आसन कमल कर साजते ।
अरू उग्र पन्नग-गण महा मुनि तेज पुंज विराजते ॥१५॥

नाना भुजाएँ उदर मुख लोचन अनेक दिखा रहे ।
अरू हो अनंत स्वरुप भी चहुं ओर आप लखा रहे ॥
तब आदि मध्य न अंत भी दृष्टि नहीं कछु आ रहा ।
विश्वेश ! तेरा रुप यह सब विश्व में तूं दिखला रहा ॥१६॥

कौमोद की कर में गदा अरू चक्र शोभित हो रहा ।
शुभ शीश पर मणि-मुकुट धारे रुप मन को मोह रहा ॥
प्रभू ! तेज के हो पुंज, सब दिशि को प्रकाशित कर रहे ।
रवि अनल से द्युतिमान होकर घोर तम को हर रहे ॥१७॥

अक्षर तुम्ही हो, जानने के योग्य जग का ज्ञान हो ।
धाता तुम्ही इस विश्वके हो और परम निधान हो ।।
रक्षक प्रभु है आपही अव्यय सनातन धर्म के ।
अरू जान पड़ता है सनातन पुरुष हो शुभ कर्म के ।।१८।।

विन आदि अंतरु मध्य और अनन्त बल के धाम हो ।
रवि चन्द्र से दो नयन दिब्य अपार भुज घनश्याम हो ।।
मैं देखता मुख में अनल भीषण ज्वलित ज्वाला धरे ।
निज तेज से ब्रह्माण्ड को तुम तप्त करते हो हरे ।।१९।।

अंतर धरा आकाश में भी व्याप्त हे अखिलेश हो ।
अरु आपही से सब दिशाएँ पूर्ण यह लोकेश हो ।।
अति देखकर यह रुप अद्भुत उग्र धीरज खो रहे ।
यह लोक तीनों हे महातमन ! व्यथित भय से हो रहे ।।२०।।

मैं देखता हूं देव गण भी आपही मैं जा रहे ।
कर जोड़ भय से कांपते है नाथ ! गुण तव गा रहे ।।
अरू सिद्धसंघ महर्षिगण भी स्वस्ति वाचन पढ़ रहे ।
शुभ गान करते स्तोत्र पुष्कल सुमन मंजुल चढ़ रहे ।।२१।।

वसु रूद्र अरू आदित्य विश्वेदेव साध्य महान है ।
सुर वैद्य अश्विनि मरुत गण भी उष्मपा धर ध्यान है ।।
गन्धर्व राक्षस यक्ष किन्नर सिद्ध संघ वड़े - वड़े ।
है देखते है आपको सब चकित चित्रित से खड़े ।।२२।।

बहु नेत्र मुखवाला बृहत् तव रूप अपरंपार है ।
बहु अनेको पैर जंघो के विकट आकार है । ।

बहु उदर जिसमें और डाढ़े भी वड़ी विकराल है।
भयभीत हूं मैं देखकर, सब विश्व भी बेहाल है ॥२३॥

अहो ! यह अनेको रुप का दैदिप्य नभ तक जा रहा।
आंखे अनेक विशाल जलती मुख खुला दिखला रहा॥
घबरा रहा हूं रुप ऐसा देख भीषणता लिये।
हे नाथ ! विकल अधिर हूं में शांति ना होती हिये ॥२४॥

अति मुख महा विकराल डाढ़े भी भयंकर लाल हैं।
मानो प्रखर कालाग्नि की यह धधकती ज्वाल है॥
मैं देखकर दिग्र-भ्रान्त हूं सुख भी नहीं आभास हो।
हे देव-देव ! प्रसन्न हो हरि आप विश्व निवास हो ॥२५॥

पुत्रादि यह धृतराष्ट्र के साथी जो उनके भूप है।
समुदाय सेना सहित धर आये अनोखे रुप है॥
गुरु द्रोण अरू श्री भीष्म कर्णादिक बड़े बलवान भी।
अरू यह हमारे पक्ष के भूपाल वीर प्रधान भी ॥२६॥

अति वेग से वे सकल है विकराल मुख में धा रहे।
अरू हां ! भयंकर डाढ़तल में दीखीते है जा रहे॥
कोई लटकते तड़फते सिर चूर चक्कर खा रहे।
दन्तावलि दुर्दान्त में दारूण दले वो जा रहे ॥२७॥

जैसे सलिल सरिता का सागर में गिरे अति दौड़कर।
वैसे ज्वलित तव मुखो में यह जा रहे है वीरवर॥
जैसे पतगे वेग वे से गिरते है जलती ज्वाल में।
वैसे ही मरने को गिरे नर मुख महा विकराल में ॥२९॥

हरि! इन प्रकाशित मुखो से हो लोक सारे ग्रस रहे ।
तुम चाटते हो लपलपाते जीभ से सब रस रहे ।।
निज तेज से पूरित जगत को कर रहे प्रभु आप है ।
अति उग्र ज्योति विश्व को देती विपुल संताप है ।।३०।।

यह रुप अद्भूत विकटधारी कौन आप महान हो ।
प्रनमामि हे देवेश ! अब संतुष्ट भी श्रीमान् हो ।।
हो कौन आदि पुरुष तुम यह चाहता मैं जानना ।
कहेये ? कृपाकर आपकी माया का मुझको ज्ञान ना ।।३१।।

भगवान बोले प्रिय सखे ! मैं लोक नाशक काल हूं ।
उद्यत हुआ क्षयलोक कारण मैं प्रवल विकराल हूं ।।
तुम रहो या मत रहो तेरे विना भी यह सभी ।
प्रतिपक्ष योद्धा नष्ट होगे बच नहीं सकते कभी ।।३२।।

इसलिये उठ हो खड़ा, रिपुदल विजय के योग तू ।
यश प्राप्त कर रण विजयी बन सुख राज्य वैभव भोग तू ।।
मारे गये मुझसे सधी पहले हि यह पृथ्वीपति ।
हे सभ्यसाची ! निमित बन अवसर मिला चूके मति ।।३३।।

आचार्य द्रोण श्री भीष्म जयद्रथ कर्ण योद्धा से घने ।
अति प्रवल यह रण शूर मैंने ही सकल पहले हने ।।
इन सब मरो को मार पारथ टूट पड अरि सैन्य पर ।
तेरी विजय निश्चय समर में, इसलिये तू युद्ध कर ।।३४।।

संजय कहा राजन ! धनंजय ने सुना ऐसा कथन ।
कर जोड़कर भयभीत सा गद् गद् हुआ बोला वचन ।।३५।।

है योश हे हृषिकेष ! जन अनुरक्त नाम प्रभाव से।
अरू हो रहा हर्षित जगत जस सुन तुम्हारा चाव से॥
भयभीत होकर अधम राक्षस हैं चहु दिशि भागते।
सब सिद्ध संघ खड़े हुए झुकि-झुकि चरण तव लागते॥३६॥

व्रह्मादिको के आदिकर्ता हे महात्मन् ! हो बड़े।
तो फिर कहो कैसे न करते वंदना सुर गण खड़े॥
इस विश्व के आधार देव अनंत तुम भगवान हो।
जो सत असत से है परे वह तत्व व्रह्म महान हो॥३७॥

तुम हो पुरातन पुरूष, आदि देव परम निदान हो।
कल्याण के हो धाम हे घनश्याम विश्व निधान हो॥
जानने के योग्य हो अरू जानने वाले तुम्ही।
हे देव ! रूप अनंत से व्यापक हो मतवाले तुम्ही॥३८॥

पावन पवन शशि वरूण यम अग्नि तुम्ही विश्वेश हो।
धाता तथा उनके विधाता भी महा देवेश हो॥
प्रभु ! आपके शुभ चरण में नित-नित सहस्त्र प्रणाम हो।
पुनि-पुनि प्रणाम् ! प्रणाम् बारंबार मम घनश्याम हो॥३९॥

आगे नमन् पीछे नमन् चहुं ओर नाथ ! प्रणाम हो।
व्यापक सकल सामर्थधारी हो अतुल बलधाम हो॥४०॥

मैं मानकर साथी सखा जो कुछ कहा वह भूल थी।
अरू प्यार से हठ से कहो बुद्धि मेरी प्रतिकूल थी॥
हे कृष्ण ! यादव ! अरू सखा समझा था केवल नाटकी।
मैं जानता महिमा नहीं था विश्वरुप विराट की॥४१॥

हँसि परिजनो के सामने एकान्त या व्यंवहार में।
उठ बैठने चलने में क्रीड़ा शयन वो आहार में॥
अपराध जों मैंने किया उसकी क्षमा अब दीजिये।
हो अमित गुणवाले दयामय दया मुझपर कीजिये॥४२॥

सब इस चराचर लोक के तुमही पिता भगवान हो।
वो आप गुरूओं के गुरू भी योग्य पूज्य महान हो॥
प्रभु ! आपसा त्रैयलोक में कोई शक्तिशाली है नहीं।
ज्योती अनंत प्रभाव सी जग में निराली है नहीं॥४३॥

इस हेतू नाथ ! प्रणाम करता चरण में धर शीश है।
संतुष्ट करने के लिये यह प्रार्थना जगदीश है॥
ज्यों पिता सुत नारि के पति मित्र बन्धु के किये।
वैसे ही मेरे आप हैं अपराध सहने के लिये॥४४॥

भगवन ! तुम्हारे रूप को हर्षित हुआ मैं देखकर।
किन्तु कभी देखा नहीं इससे मुझे लगता हैं डर॥
होकर प्रसन्न दिखाईये हे देव। देव !! अनूप है।
मुझको दयानिधि ! आपका पहले ही वाला रूप है॥४५॥

मैं देखना भी चाहता हूं प्रथम जैसा हे हरे !।
मणि मुकुट कुंडल कमल कौस्तुभ शंख चक्र गदा धरे॥
हे विश्व रूप सहस्त्रवाहो ! फिर वही दिखलाइये।
प्रभ ! माधुरी मुरती मनोहर चतुर्भुज बन जाइये॥४६॥

भगवान बोले प्रिय सखे ! होकर प्रसन्न सुजान मैं।
तुझको दिखाया योगबल से विश्वरूप महान मैं॥

सुन यह अनंत विराट तेजोमय परम अद्भुत अभी।
तूने ही देखा तुझ सिवा देखा किसी ने ना कभी ॥४७॥

यह वेद से स्वाध्याय से तप यज्ञ दानरू धर्म से।
अरू दिख नहीं सकता कदापि उग्र साधन कर्म से ॥
यह विश्वरूप विराट मेरा पार्थ ! मैं कहता सहि।
तेरे बिना इस लोक में कोई देखने पाया नहि ॥४८॥

यह रूप मेरा देख भीषण, व्यग्र ना भयभीत हो।
तज अज्ञता अरू व्यथा पारथ मोह निद्रा जीत हो॥
अब हर्ष मन से भय विमोचन देखले होकर निडर।
दिखला रहा हूं रूप मेरा फिर वही हे मित्रवर ॥४९॥

संजय कहा राजन ! हरि, यों वचन उच्चारण किया।
सुन्दर सलोना सावला सुठि सौम्य तनु धारण किया ॥
उस रम्य राजिव रूप से रहि रण धरा भी जगमगा।
पुनि भक्त को भगवान ने धीरज दिया छाती लगा ॥५०॥

फिर शान्त होकर पार्थ यह भगवान से बोला वचन।
तव सौम्य तन लख पूर्व सा मैं हो गया आनंद मन ॥५१॥

दुर्लभ दरस तूने किया बोले प्रभु यह बात है।
वो देखने को तरसते सुर-वृन्द भी दिन रात है ॥५२॥

नहीं देख सकता है कोई श्रुति दान मखतप योग से।
तूने किया जैसा कि दर्शन यह मेरा संयोग से ॥५३॥

दोहा— जो यहि भांति अनन्य मम भक्ति से भरपूर ।
वो प्रवेश करि तत्व से जानै लखै न दूर ॥५४॥

मत्पर होकर भक्त बन करे सकल मम काम ।
संग रहित निर्वैर हो पावै मोहि ललाम ॥५५॥

श्री कृष्ण गीता का विश्वरूप-दर्शन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।



॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

★ बारहवाँ अध्याय ★

—: भक्ति योग :—

दोहा — अर्जुन पुनि पूछन लगा कहिये श्री भगवान ।
सगुण रूप से आपका करता है जो ध्यान ॥
और भजे निर्गुन सदा जो अक्षर अव्यक्त ।
इन दोनों में से कहो ? कौन श्रेष्ठ है भक्त ॥१॥

सोरठा— बोले श्री यदुवीर, सुनकर अर्जुन के वचन ।
कहहूं सुनो धर धीर सखा जान अति प्रिय तुम्हे ॥
नित्य युक्त हो पार्थ, दत्तचित श्रद्धा सहित ।
वो मम भक्त यथार्थ सगुण रूप मेरा भजै ॥२॥

चौपाई— जो अव्यक्त अचिन्त्य अपारा ।
अनिर्देश्य अक्षर ओंकारा ॥
सर्व व्यापि कूटस्थ चिरंतन ।
भजे निरंतर अचल सनातन ॥३॥

सकल इन्द्रिया बसकरि राखै ।
सम बुद्धि मिथ्या नहीं भाखै ॥
सब जीवो का हित मन लावै ।
वो पारथ ! निश्चय मोहि पावै ॥४॥

जो अव्यक्त मँहि रत है भाईं ।
उनको होता क्लेश सदाईं ।।
सहन करे जो विपत निदाना ।
सो पावै यह गति महाना ।।५।।

सकल कर्मं मोहि अर्पित करहीं ।
मत्पर होई सदा आचरहो ।।
जो अनन्य मन से धरि ध्याना ।
करत भजन चित देई सुजाना ।।६।।

निज भक्तो का करौं उद्धारा ।
विन विलंव सुन पांडु कुमारा ।।
मरण-रुप भव सिन्धु आपारा ।
तासे ताहि उतरो पारा ।।७।।

देहु लगा मुझमें मन बुद्धि ।
अतिशय इन्द्रिय आत्म विशुद्धि ।।
तदुपरान्त मेरे मन मांही ।
बसो अवसि कछु सशय नाही ।।८।।

जो मुझमें थिर चित्त यथारथ ।
कर नहि सको यदि तुम पारथ ।।
कर अभ्यास योग का भाई ।
रखहु लालसा मन उपजाई ।।९।।

हो न सको यदि योगाभ्यासी ।
मम हित कर्मं करहु सुखराशी ।।

मम हित लागि करम जो करहीं।
लहै सिद्ध सब कारज सरही ॥१०॥

सधै नहीं यह भी कोई कारण।
तो मेरा आश्रय कर धारण ॥
छोड़हु सकल कर्म फल आशा।
मन संयम रखि तजि भय त्रासा ॥११॥

दोहा— ज्ञान बड़ा अभ्यास ते, श्रेष्ट ज्ञान ते ध्यान।
बड़ा ध्यान ते त्याग है, शान्ति करत प्रदान ॥१२॥

चौपाई— हो निर्वैर सकल प्राणिन में।
करूणा मित्र भाव हो जीन में ॥
अहंकार मन में नहीं ममता।
क्षमावान सुख दुख में समता ॥१३॥

योगी तुष्ट सदा अनुरक्ता।
मन बुद्धि से मम आसक्ता ॥
दृढ़ निश्चयी जो संयम धारा।
वो है परम भक्त मोहि प्यारा ॥१४॥

जिनसे जन नहीं पावै क्लेशा।
उनको जन से दुख नहीं लेशा ॥
भय क्रोधादिक से जो न्यारा।
वो है परम भक्त मोहि प्यारा ॥१५॥

उदासीन निरपेक्ष अपारा ।
चतुर सुचि गत व्याथा विकारा ॥
त्यागी सर्वारंभ प्रकारा ।
वो है परम भक्त मोहि प्यारा ॥१६॥

कर्म शुभाशुभ फल का त्यागी ।
नहीं हर्ष - इच्छा अनुरागी ॥
शोक द्वेष से करे किनारा ।
वो है परम भक्त मोहि प्यारा ॥१७॥

वैरी मित्र बराबर जाना ।
मान और अपमान समाना ॥
गरम शीत सुख दुख सम जाके ।
कबहु रहे ना संग बना के ॥१८॥

जाको निन्दा और बड़ाई ।
है समान संतुष्ट सदाई ॥
मौन भक्त स्थिर मति घरहीन ।
संत योहि प्रिय अस गुण भीना ॥१९॥

दोहा— धर्मामृत उपदेश यह, ले मत्पर चित्त धार ।
श्रद्धायुत प्रिय भक्त मम, भव तट उतरै पार ॥

श्री कृष्ण गीता
कृष्ण अर्जुन संवाद में भक्ति योग नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ



॥ श्री हरिः ॥

* श्री कृष्ण - गीता *

* तेरहवाँ अध्याय

—: क्षेत्र - क्षेत्रज्ञ - विभाग :—

दोहा— दया सिन्धु बोले पुनि, सुन पारथ मम बात ।
क्षेत्र नाम से समझ तू, है शरीर विख्यात ॥
जो जाने इस क्षेत्र को, कहे उन्हें तत्वज्ञ ।
ज्ञाता है वह क्षेत्र का इससे है सर्वज्ञ ॥१॥

सोरठा– अब तू मुझको जान, क्षेत्रो में क्षेत्रज्ञ हूं ।
इन दोनों का ज्ञान मेरे मत में ज्ञान है ॥२॥
जो है जैसा भान, क्षेत्र प्रभाव विकार मय ।
सुन मैं करूं बखान, थोड़े में क्षेत्रज्ञ का ॥३॥

चौपाई– छंदो में ऋषिगण सब गाया ।
व्रह्मसूत्र के पद में आया ॥
निश्चय करि युक्ति युत प्यारा ।
कारण सहित अनेक प्रकारा ॥४॥

वारि पवन पावक नभ धरणी ।
अहंकार प्रकृति घी वरणी ॥
दश इन्द्रिय मन एक विचारो ।
पाँच विषय इन्द्रिय का धारो ॥५॥

इच्छा सुख दुख द्वेष बताया ।
धृति संघात चेतना माया ।।
यहि क्षेत्र समुदाय विकारा ।
कहा तोहि संक्षेप प्रकारा ।।६।।

दंभ और अभिमान विहीना ।
शान्ति आर्जव निग्रह लीना ।।
क्षमा अहिंसा सुस्थिर बुद्धि ।
गुरुजन सेवा आत्म विशुद्धि ।।७।।

इन्द्रिय सुख से सदा विरागी ।
दंभ मान ममता का त्यागी ।।
जीवन मरण जरा दुख व्याधी ।
इनमें देखै दोष उपाधी ।।८।।

घर धरनी संपति सुत धरणी ।
इन मँह ममता कबहु न करणी ।।
इष्ट अनिष्ट लाभ मँह भाई ।
रखै एकसा चित्त सदाई ।।६।।

अरू अन्यन्य भावते प्रेरी ।
निश्चल भक्ति करे वो मेरी ।।
करे सदा एकान्त निवासा ।
कामी जन संग कभी न बासा ।।१०।।

दिव्य ज्ञान अध्यात्म विचारे ।
सदा तत्व दर्शन निरधारे ।।

तत्व ज्ञान एक ज्ञान महाना ।
अरू विपरीत सभी अज्ञाना ॥११॥

छन्द- कहता जिसे सुन मोक्ष मिलती जान ज्ञान युगादी हैं ।
अरू सत असत् से जो परे वो पूर्ण ब्रह्म अनादि है ॥१२॥
सर्वत्र सिर मुख हाथ पग चहुं ओर भी दृग कर्ण है ।
छाया जगत में है वही उसका ही सारा वर्ण है ॥१३॥
वो गुण प्रकाशक इन्द्रियों का इन्द्रिया उसमें नहिं ।
निर्लेप भव पालक सदा निंगुण भी भोग सहि ॥१४॥
उसका चराचर जीव में भीतर वो बाहर बास है ।
जाना न जावे सुक्ष्म है अति दूर है अति पास है ॥१५॥
अविभक्त जोई विभक्त बन यह विश्व संचालन करे ।
है जानने के योग्य उत्पन्न नाश वो पालन करे ॥१६॥

दोहा— सब तेजो का तेज है, तम से परे महान ।
जो सबके उर में बसा, ज्ञान-गम्य ज्ञेय जान ॥१७॥
सुन थोड़े में यों कहा ज्ञेय क्षेत्र का ज्ञान ।
मम स्वरूप को प्राप्त हो भक्त तत्व से जान ॥१८॥

चौपाई— प्रकृति पुरुष यह दोउ अनादी ।
जानहु तत्व सदा महदादी ॥
सतो गुणादिक सभी विकारा ।
है संभूत प्रकृति के द्वारा ॥१९॥

सृजन कर्म करण गुण हेतू ।
है यह प्रकृति समझ मन ले तू ॥
सुख दुख भोग हेतु है जीवा ।
जानहु निश्चय है बल सीवा ॥२०॥

प्रकृति मध्य रहि पुरुष सदाई ।
भोगे प्रकृति जन्य गुण भाई ।।
बुरी भलि योनि का दाता ।
इन्हीं गुणों का संग बताता ।।२१।।

दृष्टा वही अनुमोदन करता ।
और भोगता भी है भरता ।।
परम आत्मा शिव है जोई ।
व्यापक पुरुष देह में सोई ।।२२।।

जो जन पुरुष प्रकृति को जाने ।
यहि विधि गुणन सहित पहचाने ।।
वे व्यवहार चहे जिमि बरते ।
पुर्नजन्म नहि धारण करते ।।२३।।

कोई एक भक्त हृदय धरि ध्याना ।
देखहि आतम रुप महाना ।।
ज्ञानी सांख्य ज्ञान करि जोई ।
देखहि कर्म योगते कोई ।।२४।।

दूसर नहीं जाने निज मन ते ।
सुनकर भजै वो ज्ञानी जन ते ।।
श्रद्धा से नर भजन जो करही ।
मरण रुप भवसागर तरही ।।२५।।

यावन्मात्र वस्तु कर भोगा ।
प्रकृति पुरुष करहि संयोगा ।।

है उत्पन्न जगत यह सारा।
सकल चराचर जीव प्रकारा ॥२६॥
नाशवान भूतो में भाई।
सम अविनाशी रहे सदाई॥
लखै यहि विधि जो भगवाना।
देखत सोई, यथारथ जाना ॥२७॥

दोहा— जो व्यापक सर्वत्र सम, लखै ईस को तात।
हनन आत्म नहि निज करै, परम गति को जात ॥२८॥
जो जाने प्रकृति करै जग का सारा कर्म।
लखै अकर्त्ता आतमा देखत सोई मर्म ॥२९॥

छन्द–जो भिन्नता है प्राणियों की एक में ही देखता।
विस्तार उसका जान ले तब ब्रह्म का पाता पता ॥३०॥
मरमात्मा अव्यय अनादि अरू सदा गुण हीन है।
देहस्थ होकर भी अकर्त्ता पार्थ लिप्प कभी न है ॥३१॥
जो सर्व व्यापक सुब्म नभ ? लीप्त होता है कहीं।
तैसे ही व्यापक देह में स्थित आतमा लिपता नहीं ॥३२॥
जैसे प्रकाशित एक दिनकर, कह रहा संसार को।
क्षेत्रज्ञ त्यों करता प्रकाशित क्षेप्र के व्यापार को ॥३३॥

दोहा— भेद क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का मुक्ति, प्रकृति, विकार।
ज्ञान नेत्र से जो लखै पावै ब्रह्म अपार ॥३४॥

श्री कृष्ण गीता
श्री कृष्ण अर्जुन संवाद में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग
नामक तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ।

शुद्ध
नभ ? — नभ क्या ?

॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

★ चौदहवाँ अध्याय ★

—: गुण त्रय विभाग :—

सोरठा– पुनि बोले भगवान, ज्ञानोत्तम जो ज्ञान है।
मुनि जन शाई जान, परम सिद्धि सो मैक हूं ॥१॥
ज्ञानाश्रय ते लोग, मम स्वरुप को प्राप्त करि।
व्यथा प्रलय ना भोग, सृष्टि आदि नहीं जन्म ले ॥२॥

चौपाई– प्रकृति योनि मम है निराधार।
गर्भाधान करौ तँह प्यारा ॥
तासे सृजन चराचर प्रनी।
होवत सुनहु ध्यान धरि ज्ञानी ॥३॥

सकल योनि मँह विविध शरीरा।
जेते प्रकट होत लखु वीरा ॥
उनकर जान प्रकृपि है माता।
मैं हूं पिता बीजकर दाता ॥४॥

जो उत्पन्न प्रकृति आधारा।
सत-रज-तम गुण तीन प्रकारा ॥
वाँधत देह मध्य अविनाशी।
जीव - आत्मा को सुखराशी ॥५॥

शुद्ध	शुद्ध
निराधार – निराधारा।	प्रनी – प्रानी।

इन मँह निर्मल परम प्रकाशक।
निर्विकार सतगुण अधनाशक॥
सुखा शक्ति से जीव प्रमाना।
ज्ञान सदा बांधै अभियाना॥६॥

फल तृष्णा से उत्पन्न होई।
राग रुप राजस गुण सोई॥
कर्मासक्त जीव को पारथ।
बांध लेत है यही यथारथ॥७॥

सकल जीव का मोहनकारी।
है अज्ञान जन्य तम भारी॥
आलस निद प्रमान्द हि द्वारा।
बांध लेत प्राणी जग सारा॥८॥

सुख में सहज सतोगुण साजे।
कर्मो बीच रजोगुण राजे॥
ढककर ज्ञान तमोगुण देता।
लगा प्रमादहि मध्य सुचेता॥९॥

रज तम दाव सत्तोगुण बाढे।
सत्तरज दाबि तमोगुण गाढे॥
सत्त तम दाब रजोगुण जानो।
बढे सदा यह निश्चय मानो॥१०॥

दिव्य ज्ञान से हो जेहि काला।
दशो द्वारबिच भव्य उजाला॥

शुद्ध
अभियाना – अभिमाना।

जानै जबहि सत्तोगुण मन में ।
व्याप रहा है निर्मं मन में ॥११॥

दोहा– लोभ वृत्ति अरू कर्म रति तृष्णा-विषय महान ।
हो अशान्ति उत्पन्न जब ताहि रजोगुण जान ॥१२॥
अंधकार चित्त में रहे आलस - कर्म - प्रमाद ।
जान तमोगुण, जब प्रकट, बाढे मोह विषाद ॥१३॥

चौपाई— मरण काल बेला में भाई ।
होय सत्तोगुण की अधिकाई ॥
तो वह जीव परम गति पावै ।
अरू उत्तम सुरलोक सिधावै ॥१४॥

रजोबृद्धि में करकर येहा ।
कर्मासक्त धरै पुनि देहा ॥
और तझोगुण में जो मरही ।
जन्म मूढ़ योनि मँह धरही ॥१५॥

सदा पुण्य कर्मो का जानो ।
निर्मंल सात्विक फल पहिचानो ॥
राजस गुण का फल दुःख भ्राता ।
फल अज्ञान तमोगुण दाता ॥१६॥

सत से ज्ञान होत सुखदाई ।
लोभ रजोगुण से प्रकटाई ॥
तामस गुण से होत प्रधाना ।
मोह प्रमाद और अज्ञाना ॥१७॥

शुद्ध — शुद्ध
निर्मं – निर्मंल । तझोगुण – तमोगुण ।

स्वर्गलोक सात्विक जन जावैं।
राजस मध्य लोक गति पावैं॥
अरू प्रमाद तामस गुण धारी।
अधोगति पावैं ससारी॥१८॥

गुणहि छाडि दूसर नहीं कोई।
कर्त्ता है देखत जो गोई॥
जाने गुण से परे अनूपा।
वह पावैं मम नित्य स्वरूपा॥१९॥

यह गुण तीन जीत हो पारा।
जो शरीर कारण निरधारा॥
जन्म, जरा, मृत्यु छूट जावैं।
अरू अमृत फल को वह पावैं॥२०॥

अर्जुन कहा प्रभु का? चीन्हा।
जो गुण तीन पार नर कीन्हा॥
उनकर कस आचार विचारा।
तरैं गुणों से कौन? प्रकारा॥२१॥

कहि भगवान करैं नहि द्रोहा।
पाय प्रकाश, प्रवृति अरू मोहा॥
अरू अलाभ मँह करे न लोभा।
यह गुणज्ञ संतन कर सोभा॥२२॥

हो न गुणों ते विचलित दीना।
उदासीन सम हो आसीना॥
वरत रहै गुण में गुण जानी।
डिगे कभी ना यहि विधिमानी॥२३॥

आत्मभाव स्थित हुआ निरन्तर।
समझे मिट्टी सोना पत्थर॥
सुख दुख प्रिय अप्रिय समाना।
रहे धीर जस अजस न जाना॥२४॥

मान और अपमान न जाने।
जो अरि मित्र बराबर माने॥
सर्वारम्भ कर्म का त्यागी।
गुणातित वह नर बड़भागी॥२५॥

निर्मल निश्चल भगति दृढ़ाई।
भजे सदा जो मुझको भाई॥
गुणातित वह नर होई जावै।
व्रह्म सनातन पद को पावै॥२६॥

दोहा— अव्यय - अमृत - अज अमर
ब्रह्म प्रतिष्ठीत रूप
हुं ऐ कान्तिक सुख महा
शाश्वत धर्म अनूप॥२७॥

श्री कृष्ण गीता का गुण त्रय विभाग योग नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



॥ श्री हरिः ॥

❋ श्री कृष्ण - गीता ❋

★ पन्द्रहवाँ अध्याय ★

—: पुरूषोत्तम योग :—

(१)

दोहा— मधुर मुसकि मोहन कही, पारथ सुन धरि ध्यान ।
त्रिमल ज्ञान कल्याणमय, कहूं तोहि प्रिय जान ॥
जड़ उपर शाखा तले पल्लव वेद वखान ।
जो जाने इस वृक्ष को वह वेदज्ञ महान ॥

(२)

छन्द - अध उर्द्ध में शाखा गई अंकुर विषय गुण से बड़े ।
नरलोक में कर्मानुबंधी जा रही नीचे जड़े ॥

(३)

नहीं आदि अंत न मध्य भी मिलता नहीं किसी ओर से।
दृढ़ मूल पीपल काट तू वैराग्न शस्त्र कठोर से ॥

(४)

तो फिर निकालो परम पद को खोजो अनुसंधान से ।
पाकर जिसे लोटेन फिर नर श्रेष्ठ दिव्य स्थान से ॥
मैं हूं शरण उस आद्य की जो देव ज्योतिरूप है ।
जिससे पुरातन यह प्रवृति हो रही अनुरूप है ॥

(५)

जो संग जीता, मान का अरू मोह का नहीं काम है।
अध्यात्म मग्न है रात दिन रहता सदा निष्काम है॥
वे छूट सुख दुख द्वन्द से भजता रहे अजेनाभ[1] है।
ऐसे महाज्ञानी सुनो करते परम पद लाभ है॥

(६)

चौपाई—जँह नहिं होत प्रकाशित भानू।
चन्द्र किरण नहीं तेज कृशानू॥
वहां गये आवै नहीं कोई।
मेरा परम धाम है सोई॥

(७)

जीव सनातन अंश हमारा।
चेतन रूप सकल ससारा॥
तृगुणमयी प्रकृति का वासी।
मन इन्द्रिय खेचत सुखराशी॥

(८)

धारण करै जीव यह देही।
अथवा त्याग करे जब येही॥
इन्द्री संग लै जावै कैसे।
गंध पुष्प से मारूत जैसे॥

---

१ कमल है जिसकी नाभी में ऐसे भगवान विष्णु से।

(९)

देह मध्य जीव करी वासा।
रसना त्वचा कर्ण दृगनाशा॥
इनका आश्रय लेकर मन है।
करता सदा विषय सेवन है॥

(१०)

एक देह से दूसर देहा।
जावत, रहत, भोग गुण येहा॥
अज्ञानी जन देख सकैं ना।
ज्ञानी लखे ज्ञान के नैना॥

(११)

जतन करत योगी जन जाने।
आत्म तत्व निज मँह पहिचाने॥
यतन करत की लखैं न प्राणी।
जो मलिन मुरख अभिमानी॥

(१२)

जासे विश्व प्रकाशित सारा।
जो है रवि में तेज अपारा॥
प्रभा दिव्य जो चन्द्र अनल है।
वह मेरा ही तेज सकल है॥

(१३)

करि प्रवेश भूमि के मांई।
धारण करौ चराचर जाई॥

रसमय चन्द्र होई सुखकारी ।
पुष्ट औषधि करता सारी ।।

(१४)

दोहा— अग्नि बनकर देह में, प्राणाप्रान समेत ।
अन्न पचाऊँ चतुर्विध वह पुष्टी कर हेत ।।

(१५)

छन्द – सब में बस मैं और मुझमें स्मृति अपोहन[1] ज्ञान भी ।
वेदज्ञ हूं वेदान्पकर्त्ता वेद[2] वेद्य प्रधान भी ।।

(१६)

दो पुरुष है इस विश्व में क्षर और अक्षर मान ले ।
क्षर भूतगण को है कहा कूटस्थ अक्षर जान ले ।।

(१७)

परमात्मा कहते जिसे वह पुरुष उत्तम अन्य है ।
जो सर्व व्यापि लोक पोषक ईश अव्यय धन्य है ।।

(१८)

मैं हूं परे क्षर और अक्षर से भी उत्तम हूं महा ।
इस हेतु पुरुषोत्तम मुझे यह लोक वेदो ने कहा ।।

(१९)

वह भक्त जो मतिमान, मुझको पुरुष उत्तम जानता ।
सब भाव से सर्वज्ञ हो मुझको भजे पहिचानता ।।

---

(१) अपोहन - विवेक । विवेक के द्वारा संशयादि दोषों को हटाने का नाम अपोहन है । (२) वेदो से जो जाना जाय ।

(२०)

दोहा — गुप्त ज्ञान यहि शास्त्र का, मेंने किया बखान ।
सफल सदा जीवन करे, बुद्धिमान यहि जान ।।

श्री कृष्ण गीता का
पुरुषोत्तम योग नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।
दयामय कृष्ण चन्द्र की जय



॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

★ सोलहवाँ अध्याय ★

—: देवासुर सम्पद् :—

दोहा— पारथ से कहने लगे करुणामय भगवान ।
सुनो संपदा आसुरी दैवी करु बखान ॥

ज्ञान, दान, तप, यज्ञ शुचि योग-वृत्ति लवलीन ।
स्वाध्याय दम आर्जव सदा रहे भयहीन ॥१॥

शान्ति कोमलता दया सत्य अहिंसा त्याग ।
नहीं चपल निर्लज नही निन्दा तृष्णा राग ॥२॥

तेज क्षमा धीरज शुचि नही द्रोह अरू मान ।
यह तो दैवी संपदा के है लक्षण जान ॥३॥

क्रोध महा वाणी कड़ी, अति घमंड अज्ञान ।
अभिमानी पाखंड रत, असुर संपदा जान ॥४॥

चौपाई— दैवी मोक्ष देत धनुधारी ।
अवरी आसुरी वंधनकारी ॥
जन्म मोर दैवी संपत से ।
मत कर शोक वृथा मम मत से ॥५॥

सृष्टि जग दोउ भांति दिखाती।
दैवी और आसुरी जाती॥
कहि देव सपद विस्तारी।
सुनहु आसुरी सपद सारी॥६॥

हैं का? प्रवृति निवृति जग मांही।
आसुरी जन अस जानत नाही॥
उनमँह सत्य शुद्ध आचारा।
होत कवहुँ ना पांडु कुमारा॥७॥

कहत आसुरी यही जग सारा।
मिथ्या है विन ईश अधारा॥
केवल नर नारिन संयोगा।
रचा कामहित, भोगहु भोगा॥८॥

अस विचार करि मन अभिमानी।
नष्ट आत्मा नर अज्ञानी॥
जग नाशक, पर कारज हरही।
जन्म उग्र-कर्मा अस धरही॥९॥

आश्रय ले कामना अधूरी।
दंभ मान मद में रहो चूरी॥
मनमाने सिद्धान्त बनाई।
चलै भ्रष्ट मारग अपनाई॥१०॥

वह अनेक चिंता ते घेरा।
मरणकाल पर्यन्त घनेरा॥

केवल एक धेय यही जानै ।
काम भोग मँह अति सुख मानै ॥११॥

आशाओं की बंध फांसी में ।
भरा क्रोध काम राशी में ॥
करि अनिति धन संचय करही ।
विषय भोग हेतु चित धरही ॥१२॥

आज मोहि धन इतना पाया ।
कल पुनि भरी मिलेगी माया ॥
सकल मनोरथ पूरण कामा ।
यह सब मोर अहै धन धामा ॥१३॥

प्रवल आज रिपु पकड़ पछारा ।
कल दुसर पुनि करब सहारा ॥
सिद्ध सुखी हूं में बलवाना ।
अरू मैं भोगी ईश महाना ॥१४॥

दोहा– धन बल जन बल विभव में, मेरे कौन समान ।
दान, यज्ञ, सुख मैं करूं यो मोहित अज्ञान ॥१५॥

चौपाई— वहु विभ्रान्त चित्त चहुँ ओरा ।
फँसा मोह माया घनघोरा ॥
काम भोग आसक्त शरीरा ।
पड़े नरक पावै अति पीरा ॥१६॥

छन्द–अपनी प्रशंसा से भरा धन मान मद में चूर है ।
विधिहीन करते यज्ञ दंभी नाम से भरपूर है ॥१७॥

अरू काम इर्षा क्रोध वस निन्दा करे अहंकार से ।
जो व्याप्त सब में, द्वेष करते लोग मुझ करतार से ॥१८॥

जो क्रूर-कर्मी है नराधम मग्न भ्रष्टाचार में ।
मैं आसुरी योनि में उनको डालता संसार में ॥१९॥

वे जन्म जन्मों में असुर योनि भटकते ही फिरे ।
फिर तो मुझे पाते नही वे अधम नरकों में गिरे ॥२०॥

सुन काम क्रोध अरू लोभ यह मारग नरक के तीन है ।
यह त्यागने के योग है अरू आत्म नाशक हीन है ॥२१॥

इन नरक के द्वारो से जो नर पार्थ ! छुटकारा करे ।
कल्याण कारक आत्मा का होय भवसागर तरे ॥२२॥

जो शास्त्र विधि को छोड़,मन से कर्म को करता जायगा ।
मिलती उसे सिद्धि न सुख वो परम गति नहि पायगा ॥२३॥

दोहा — निर्णय कार्य अकार्य में, शास्त्र प्रमाण न भूल ।
सकल कर्म कर जगत, मैं शास्त्र विधि अनुकूल ॥२४॥

(श्यामय कृष्णचन्द्र की जय शरणम्)

श्री कृष्ण गीता का

देवासुर संपद नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।



॥ श्री हरिः ॥

* श्री कृष्ण - गीता *

* सत्तरहवाँ अध्याय *

—: श्रद्धा त्रय विभाग :—

दोहा— अर्जुन ने कर जोड़ के पूछा हिय हरखात ।
दया सिन्धु वतलाईये, पुनि हम से यह बात ॥
श्रद्धा से है पूजते शास्त्र विधि तज जौन ।
सात्विक राजस तामसी उनकी निष्ठा कौन ॥१॥

चौपाई— कहि भगवान सुनो हे भाई ।
श्रद्धा तीन प्रकार वताई ॥
स्वाभाविक लोगन में रहही ।
सात्विक राजस तामस कहही ॥२॥

श्रद्धा होत चरित अनुसारा ।
श्रद्धामय सव मनुज पुकारा ॥
श्रद्धा हो जामें जेहि भाँती ।
ताको तस जानहु दिन-राती ॥३॥

सात्विक जन पुजैं नित देवा ।
राजस असुर यक्ष कर सेवा ॥
करत सुनहु पारथ करि चेता ।
तामस पुजत भूतरू प्रेता ॥४॥

काम राग ते हो बलवाना।
मन मँह धारण करि अभिमाना।।
अहंकार दुषित मत कोरा।
करहि शास्त्र विधि तज तप घोरा।।५।।

धरा अनल वायु नभ वारी।
तत्र जीव जो देह मझारी।।
मोरे सहित कष्ट जो देते।
उनकँह निश्चय आसुर कहते।।६।।

सकल जीव प्रिय जो आहारा।
जग में है वह तीन प्रकारा।।
तिमि यह यज्ञ दान तप सारा।
उनकर भेद सुनो हे प्यारा।।।७।।

आयु, बल, नीरोग सुखकारी।
प्रीति विवर्धक थिर रसधारी।।
चिकना रूचिकद वुद्धि विचारा।
सात्विक जन प्रिय अस आहारा।।८।।

दाहक अन्न चरपरा रूखा।
खट्टा खारा तीक्ष्ण सूखा।।
रोग शोक अरू दुखप्रद सारा।
राजस जन प्रिय अस आहारा।।९।।

अति अशुद्ध ठढा रस हीना।
बासी जूठा अरू घीनघीना।।

जामे नहि आचार विचारा।
तामस जन प्रिय अस आहारा ॥१०॥

तजि फल आस जान निज धरमा।
शास्त्र विधि ते करै जो करमा ॥
मन अति शान्त राखि निःस्वारथ।
कहा यज्ञ यह सात्विक पारथ ॥११॥

फल कर आशा चित मँह धरही।
दम्भाचरण हेतु जो करही ॥
ताको मन में जान यथारथ।
कहा यज्ञ यह राजस पारथ ॥१२॥

मंत्र दक्षिणा अन्न विहीना।
जामें श्रद्धा रहे कभी ना ॥
जोई विधिहीन करै चरितार्थ।
कहा यज्ञ यह तामस पारथ ॥१३॥

दोहा–ज्ञानी गुरु द्विज देव की पुजा शुचिता ज्ञान।
नम्र अहिंसा ब्रह्मचर्य तप काया के जान ॥१४॥

हितकर दुःख हर प्रिय सदा बोलै सत्य प्रमान।
स्वाध्याय अभ्यास भी यह वाणि तप जान ॥१५॥

आत्म विनिग्रह मौनता, शुद्ध भाव का ध्यान।
मन प्रसन्न अरु सौम्यता मानस तप यह जान ॥१६॥

फल की आशा त्याग जो तीनों तप किये जात ।
श्रद्धा युत सुन पार्थ यह सात्विक तप कहलात ॥१७॥

निज पुजा सत्कार हित, करै दंभ से तात ।
वह अस्थिर नश्वर सकल राजस तप कहलात ॥१८।

हठ से निज को दुःख दे, जामे पर हित धात ।
किया जात जो तप सदा तामस तप कहलात ॥१९॥

देना है दे समझ के नहीं बदले का ध्यान ।
देश काल सत्पात्र में दे वह सात्विक दान ॥२०॥

फल की आशा को लिए प्रति लाभ को जान ।
दिया जाय जो क्लेश से वह है राजस दान ॥२१॥

देश काल सतपात्र को बिन शोचे बिन मान ।
तिरस्कार कर जो दिया वह है तामस दान ॥२२॥

छन्द– सुन ओम् तत् सत् ब्रह्म के यह तीन नाम कहे गये ।
अरू आदि में द्विज वेद मख इस ब्रह्म से ही राचे गये ॥२३॥

इस हेतु करके ब्रह्मवादी ओम का उच्चार है ।
करते क्रिया मख दान तप शास्त्रोक्त कर्म प्रकार है ॥२४॥

तत् शब्द कहकर मोक्ष इच्छक विविध कर्म विधान से ।
निष्काम होकर यज्ञ अरू करते क्रिया तप दान से ॥२५॥

सद्भाव साधुमाव में सत् शब्द आता काम है ।
सुन और भी शुभ कर्म में सत् शब्द पूर्ण ललाभ है ॥२६॥

तप दान यज्ञों में स्थिति सत् रूप है जाती कही।
अरू कर्म उनके निमित भी सत् रुप है सारे सही ॥२७॥

दोहा– श्रद्धा विन सव असत् है, मख तप दान विचार।
यहाँ किये कुछ फल नहीं, वहाँ नहीं निस्तार ॥२८॥

श्री कृष्ण गीता का
श्रद्धा-त्रय-विभाग नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



॥ श्री हरिः ॥

श्री कृष्ण गीता

★ अठारहवाँ अध्याय ★

—: सन्यास योग :—

दोहा — कहा पार्थ जानन चहूं, करिये हे हृषिकेश।
तत्वज्ञान संन्यास का, पृथक पृथक उपदेश ॥१॥
प्रभु बोले सुन प्रेम से, करता ज्ञान प्रकाश।
काम्य कर्म का त्यागना, कहलाता सन्यास ॥
त्याग विशारद विज्ञजन, बतलाते यह बात।
सकल कर्मफल त्यागना, सच्चा त्याग कहात ॥२॥

चौपाई — सारे कर्म दोषमय जानी।
त्यागन योग कहै कोउ ज्ञानी ॥
यज्ञ दान तप कबहु न त्यागे।
यह मत नीक कछु न को लागे ॥३॥

त्याग हेत निर्णय सुन मेरा।
याते संशय नाशै तेरा ॥
ज्ञानीजन लखि तीन प्रकारा।
त्याग बतावत पाँडु कुमारा ॥४॥

तप मख दान करन कै योगू।
याको त्यागै कबहु न लोगू ॥

पावन करत यज्ञ मख दाना ।
जे आचरही इन्हें मति माना ॥५॥

करै कर्म आशक्ति विहीना ।
फलकर आशा करै कभी ना ॥
करने योग उचित है पारथ ।
यह मत मेरा श्रेष्ठ यथारथ॥ ६॥

जो स्वधर्म करहै अनुसारा ।
नियत कर्म त्यागै नहिं ध्यारा ॥
मोह विवश यदि त्यागा जावै ।
तो वह तामस त्याग कहावै ॥७॥

देह क्लेश के भय ते प्रानी ।
त्यागहि कर्म अति दु:खमानी ॥
उनकर फल वे कछु नहि पावै ।
वह तो राजस त्याग कहावै ॥८॥

किया मान कर निज कर्तव्य ही ।
नियत कर्म अपना है जबही ॥
फल तज संग, किया जो जावै ।
वह तो सात्विक त्याग कहावै ॥९॥

अहित कर्म ते नहि कछु द्वेषा ।
अरू हित ते नही प्रेम विशेषा ॥
सत्व निष्ठ मेघावी त्यागी ।
संशय रहित अहै वड़भागी ॥१०॥

संभव नही कर्म सब भारी ।
त्याग सकै जो नर तनुधारी ॥
जो है सदा कर्म फल त्यागी ।
वह त्यागी सच्चा वैरागी ॥११॥

त्रिविध प्रकार कर्म कर फल है ।
शुभ अरू अशुभ मित्र अविकल है ॥
इन्हें सकामी त्याग शरीरा ।
भोगै किन्तु न त्यागी धीरा ॥१२॥

छन्द- सांख्य के सिद्धान्त में कर्मो की सिद्धि के लिए ।
कारण बताये पांच है पारथ इन्हें रखखो हिए ॥१३॥

आधार, कर्त्ता, विविध साधन, विविधि चेष्टायें कही ।
और पाँचवा है दैव इसमें बात यह कहता सही ॥१४॥

न्याय या अन्याय से तन-मन वो वाणी से करे ।
प्रारंभ नरके कर्म का है पांच हेतु भी खरे ॥१५॥

इस पर भी अपने आपको वह मानता कर्ता महा ।
तो वह कुबुद्धि अज्ञ है अरू दुर्मति उसको कहा ॥१६॥

कर्त्ता नही हूं मैं कभी निर्लिप्त बुद्धि जो अहे ।
वह मारकर सब लोक भी ना मारता ना बंध रहे ॥१७॥

यह ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय पारथ कर्म प्रेरक तीन है ।
अरू कर्म, कर्त्ता, करण, भी यह कर्म सग्रह लीन है ॥१८॥

गुण भेद से यह तीन है कर्ता, करम अरू ज्ञान भी ।
जैसा कहा है सांख्य में वैसा सुनो धर ध्यान भी ॥१९॥

जिस एक अव्यय भाव से सब भूत भिन्न अभिन्न भी ।
है देखते, उस ज्ञान को कहते है सात्विक जन सभी ॥२०॥

सब प्राणियों में दीखती नाना तरह की भावना ।
जिस ज्ञान में हो भिन्नता वह ज्ञान राजस जानना ॥२१॥

आशक्ति थोड़े अंश में ही पूर्ण की उपजा रहा ।
जो तत्व अर्थ विहिन है वह ज्ञान तामस है कहा ॥२२॥

जो किया जाय शास्त्र विधि से आश फल की त्यागकर ।
आशक्ति रागरु द्वेष बिन वह कर्म सात्विक मित्रवर !॥२३॥

इस कर्म का कर्त्ता हूं मैं यह आश फल अभिमान ले ।
है जो परिश्रम से किया वह कर्म राजस जान ले ॥२४॥
सोचे बिना ही अंत, हिंसा, हानि, बल सामर्थ है ।
अज्ञान से प्रारभ है वह कर्म तामस अर्थ है ।.२५॥

उत्साह, धीरजवान, निरहंकार, आशक्ति नहीं ।
जो तूल्य हानि-लाभ में सात्विक कहा कर्त्ता वही ॥२६॥

हिंसा, विषय, फल कामना में वृतिया जिसकी फँसी ।
लोभी, मलीन, रू शोक हर्षित जान कर्त्ता राजसी ॥२७॥

विक्षिप्त मन, मूरख घमंडी धूर्त नित रोता रहे ।
वह आलसी घाती, वो सुस्ति तामसी कर्त्ता अहे ॥२८॥
बुद्धि तथा घृति के सुनो अब भेद तीन प्रकार है ।
वह भिन्न भिन्न कहूं सभी जो गुणों के अनुसार है ॥२९॥
जो प्रवंतन अरू निवर्तन भय, अभय जाने सही ।
अरू बंध, मोक्ष, अकाज, कारज बद्धि वह सात्विक कही ॥३०॥

जहाँ काज और अकाज धर्माधर्म का नहीं ज्ञान है ।
जिस बद्धि में पारथ ! सुनो वह राजसी ले मान है ॥३१॥

माने अधर्म हि धर्म जो जिसमें मति वे काम सी ।
तम व्याप्त उलटे अर्थ को बुद्धि वही है तामसी ॥३२॥

जो अचल निष्ठायोग से धारण क्रिया करती सही ।
मन प्राण इन्द्रिय की सदा वह तो धृति सात्विक कही ॥३३॥

धारण करे जिससे सदा जो धर्म अर्थरू काम है ।
जहां तीव्र फल की लालसा वह राजसि धृति नाम है ॥३४॥

जिससे विषादरू शोक, भय, उन्माद, स्वप्न अकार्थ हो ।
नही दुर्मति को छोडती तामस धृति वह पार्थ हो ॥३५॥

अर्जुन ! सुनो मुझसे तो अब सुख भेद तीन प्रकार है ।
जिसमें रमण अभ्यास कर हो जा दुखो से पार है ॥३६॥

जो आदि में है विष के जैसा अंत में अमृत महा ।
अरू आत्म बद्धि प्रसन्नता से प्राप्त सुख सात्विक कहा ॥३७॥

पहले तो अमृत सा लगे पिछे करे विष काम है ।
इन्द्रिय विषय सयोग से सुख प्राप्त राजस नाम है ॥३८॥

प्रारंभ में अरू अन्त में जो मोह से है नित भरा ।
जिसमें है नींद, प्रमाद, आलस, सुख वही तामस खरा ॥३९॥

इनसे धरा अरू स्वर्ग में भी देव गण सब युक्त है ।
इस प्रकृति के गुण तीन से वस्तु नहीं जो मुक्त है ॥४०॥

सुन कर्म ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य शुद्रो के बँटे।
उनके स्वभावज ही गुणों से पार्थ ! यह सारे छंटे ॥४१॥

तप, शौच, शम, दम, ज्ञान, अरू विज्ञान आस्तिकता महा।
यह कर्म ब्राह्मण का सरलता, क्षमा स्वभाविक है कहा ।४२।

तेजस्विता, दाता, चतुरता, धीरता, अति शूर हो।
स्वामीपना, यह कर्म क्षत्रीय का न रण से दूर हो ॥४३॥

कृषि धेनुरक्षा वैश्य का शुभ कर्म भी व्यापार है।
अरु शुद्र का तो एक केवल कर्म सेवा सार है ॥४४॥

करते हुए ही कर्म निज-निज सिद्धियाँ पाते सभी।
निज कर्म रत पाता है कैसे सिद्धियां सो सुन अभी ॥४५॥

उत्पन्न होते जीव, जिससे विश्व सारा व्याप्त है।
निज कर्म से करता उसे नर पूज सिद्धि प्राप्त है ॥४६॥

पर-धर्म से तो श्रेष्ठ अपना धर्म निर्गुण है सही।
अनुसार कर्म स्वभाव के करता है वह पापी नही ॥४७॥

यदि दोष युक्त स्वधर्म हो तो भी नही त्यागे कभी।
जैसे धुँआ अग्नि में वैसे कर्मत्रुटीमय सभी ।४८॥

बुद्धि असक्तरु आत्मजित नहि कामना से मन हिले।
संन्यास के द्वारा उसे नैष्कर्म्य सिद्धि भी मिले ॥४९॥

पाकर परम सिद्धि जो करता ब्रह्म प्राप्त यथार्थ है।
संक्षेप से निष्ठा - परा उस ज्ञान को सुन पार्थ है ॥५०॥

दोहा– आत्म संयमी धैर्ययुत, अति विशुद्ध मति धार।
दूर विषय शब्दादि से, राग द्वेष को जार ॥५१॥

चौपाई— जो तन मन अरू वचन विजेता।
ध्यान परायण योग सुचेता॥
अरू हो नित एकान्त विहारी।
जन वैरागी स्वल्पाहारी ॥५२॥

दर्प, परिग्रह, वलहंकारा।
त्यागैं कामरु क्रोध विकारा॥
ममता हीन शान्त नर जोई।
पावै ब्रह्मरुप है सोई ॥५३॥

परमानन्द ब्रह्म का पाई।
अति प्रसन्न मन शोक विहाई॥
इच्छाहीन जीव मँह समता।
वह मेरी भक्ति मँह रमता ॥५४॥

मैं हूं कवनरू कस आकारा।
तत्व मेरा भक्ति कर द्वारा॥
जानें अर्जुन! जो मन लाई।
वह मेरे भीतर मिल जाई ॥५५॥

करते हुवे कर्म भी सारा।
जो लेते है मोर सहारा॥
वे भी मेरी पूर्णकृपा ते।
अविनासी पद को है पाते ॥५६॥

होय परायण मुझमें प्यारा।
कर्म करो अर्पण तुम सारा॥

बुद्धियोग का गहि अवलंबन ।
मुझमें धार निरतर ले मन ॥५७॥

कृपा मोरी मन मुझमें लावै ।
तो दुख सागर से तर जावै ॥
मेरी सुनो न, बन अभिमानी ।
तो ले समझ होय बड़ हानी ॥५८॥

यदि तुम कहो दंभ को धारी ।
लड़ू नहीं रण - खेत मझारी ॥
तो यह मिथ्या हठ है तेरा ।
लड़ो अवसि प्रकृति कर प्रेरा ॥५९॥

दोहा— नहीं करना जो चाहता, कर्म मोह वस होय ।
आदत से लाचार हो, अवसि करेगा सोय ॥६०॥

चौपाई— ईश्वर सब प्राणिन के अंदर ।
हृदय - देश में वसै निरंतर ॥
यन्त्रारोहित जीव निकाया ।
घुमा रही है उसकी माया ॥६१॥

यहि ते तात ! शरण गहु जाई ।
उनकर सकल भाव मन लाई ॥
तिनकर कृपा परम सुख पावो ।
शाश्वत ब्रह्म धाम को जावो ॥६२॥

करि विस्तार गुप्त यह ज्ञाना ।
मैंने तेरे लिये बखाना ॥
पूरा सोच इसे चित्त धरना ।
फिर मन भावै सो तुम कराना ॥६३॥-

पुनि सुन बात गुप्त इक मेरी ।
जासे होय भलाई तेरी ॥
तुम हो परम भक्त प्रिय मोरा ।
ताते देहुं सिखावन तेरा ॥६४॥

बनो भक्त मुझमें रख मन भी ।
मेरा पुजन, नमन, भजन भी ॥
करो, सत्य सुन वचन हमारे ।
तो पावो निश्चय मोहि प्यारे ॥६५॥

दोहा-त्यागि कर्मफल धर्म सब, मेरी शरण पधार ।
मैं मुक्ति हूं पाप से, पारथ ! शोक विसार ॥६६॥

छन्द-जो तप रहित, भक्ति रहित अरू चाहता सुनना नहीं ।
निन्दक जनों को ज्ञान यह किसी काल में कहना नहीं ॥६७॥

इस परम गुह्य महान को भक्तों में जो पहुंचायेगा ।
संशय न कुछ मुझमे मिले वह परा भक्ति पायेगा ॥६८॥

इन नरो में उससे अधिक मेरा तो प्रियकर्ता नही ।
उससे अधिक प्यारा न कोई लोक में कहता सही ॥६९॥

संवाद अपना धर्ममय जो नर पढ़ेगा मान से ।
पूजा है मुझको मानता मैं ज्ञान यज्ञ प्रधान से ॥७०॥

श्रद्धा सहित बिन दोष देखे जो सुनेगा चाव से ।
वह मुक्त, पावे पुण्य जन का लोक पुण्य प्रभाव से ॥७१॥

तूने सुना एकाग्र चित दे क्या ? इसे है ध्यान से ।
बोलो तो छुटकारा मिला क्या ? मोह से अज्ञान से ॥७२॥

चौपाई—पारथ सुन बोला यदुराई ! ।
कृपा आपकी ते सुधि पाई ॥
मिटा मोह संशय तम सारा ।
अब करिहों मैं कहा तुम्हारा ॥७३॥

संजय कहा समझ नृपराई ।
यह सवाद सुना मन लाई ॥
कृष्ण और अर्जुन का भारी ।
अद्भुत अति रोमांचित कारी ॥७४॥

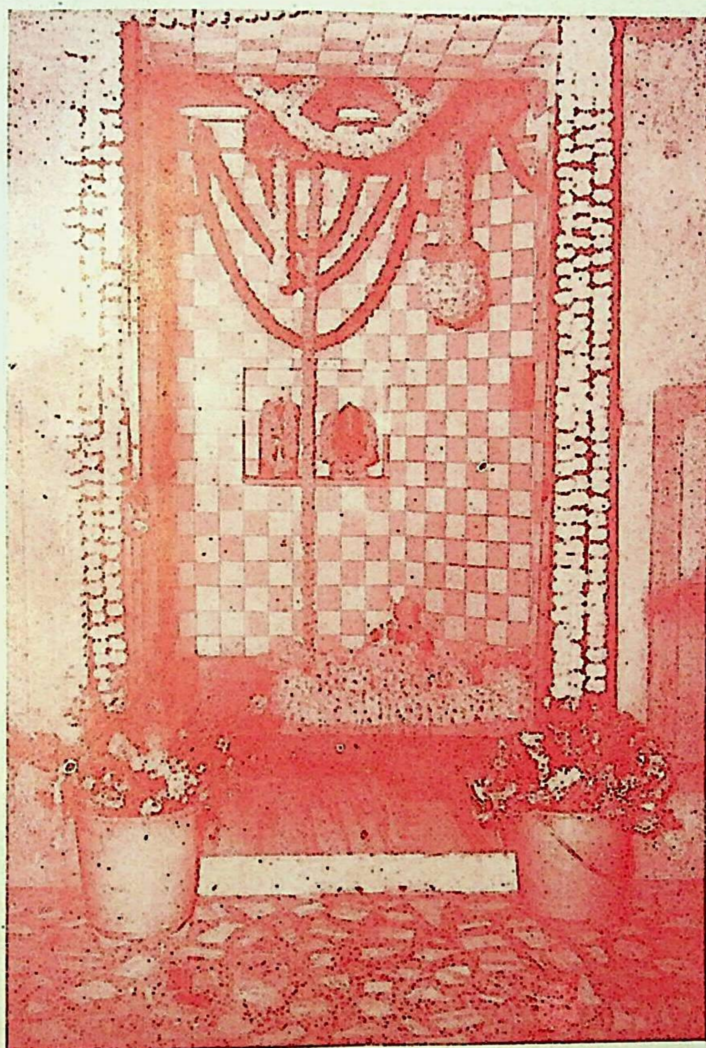
साक्षात् योगेश्वर ज्ञाना ।
निज मुख ते श्री कृष्ण बखांना ॥
मैंने गुप्त योग की बाते ।
सुनी व्यास की परम कृपा ते ॥७५॥

यह संवाद कृष्ण अर्जुन का ।
अद्भुत परम पुण्य प्रद उनका ॥
सोच - सोच नृप वारंबारा ।
मुदित होत मम हृदय अपारा ॥

वह विशाल अद्भुत हरि रूपा ।
सुमिर-सुमिर विस्मय अति भूपा ॥
होवत पुनि - पुनि हर्ष महाना ।
महिमा अमित धन्य भगवाना ॥७७॥

दोहा– जहाँ योगपति कृष्ण है, जहां धनुर्धर पार्थ ।
मेरे मत से जय वहीं, श्री निधि नीति यथार्थ ॥७८॥

श्री कृष्ण गीता का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।
ॐ तत्सत् श्री कृष्णार्पणमस्तु
(दयामय कृष्णचन्द्र की जय)



शिव रात्री का भव्य श्रृंगार

ग्यारह महादेव (शिव मंदिर)
हरमू रोड, रांची

स्व० पंडित श्री नारायण जी गौड़

क मिलने का प्रमुख स्थान

दूरभाष : २४१७३, २०१२४

नि श्री

राँची